अप्रैल - जून 1993 वर्ष : 25 ■ अंक : 2

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित

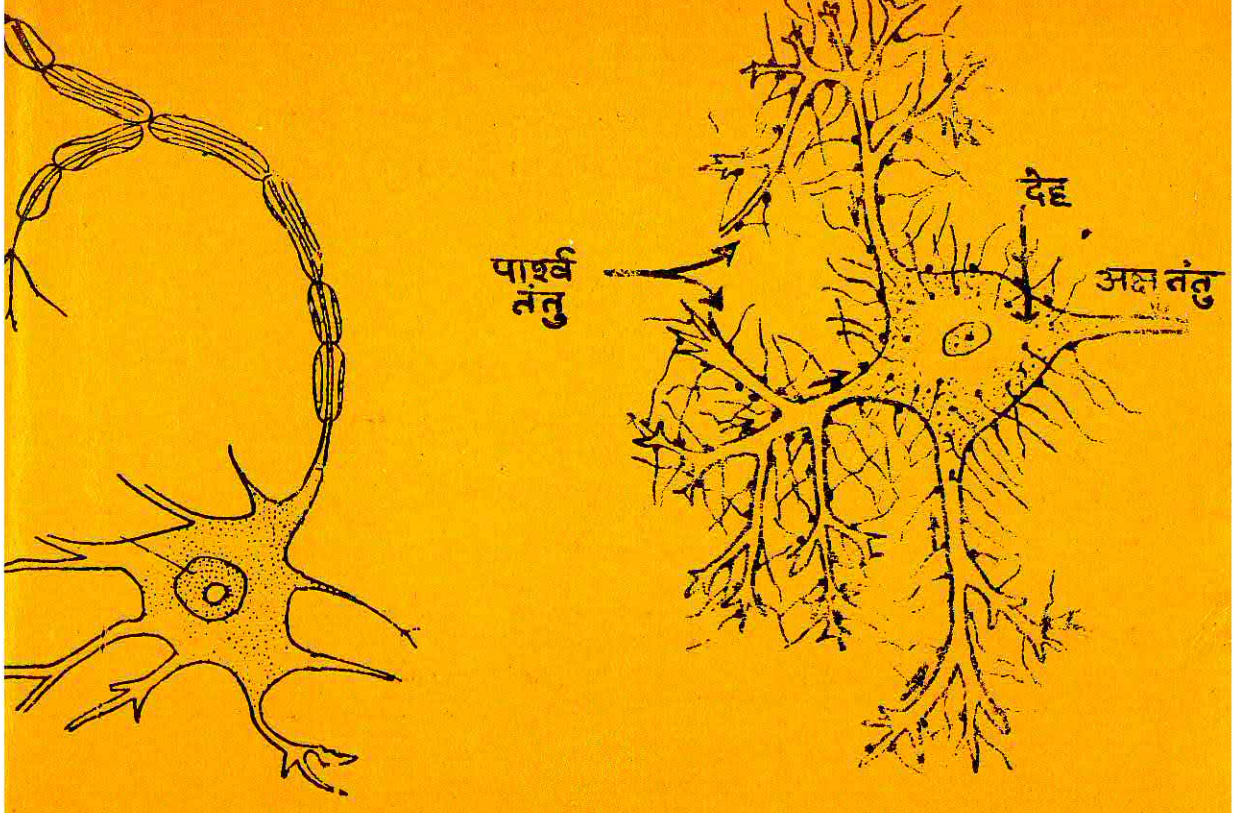

मानव मस्तिष्क के कुछ न्यूरॉन

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।
परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु.) :

	परिषद सदस्यता			**वैज्ञानिक शुल्क** 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशल्क भेजी जाती है।
3. सभी शुल्क **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से **डिमांड ड्राफ्ट** (बम्बई) अथवा **भारतीय पोस्ट आर्डर** द्वारा ही भेजें। **कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क न भेजें।**
4. सदस्यता के हेतू किसी फार्म की आवश्यकता नही है केवल शुल्क भेजें ।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में वैज्ञानिक अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें. मी. X 21 सें. मी. है।

विज्ञापन की दरें	:	**(एक अंक के लिए)**
अंतिम आवरण	:	रु. 2, 500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु. 2, 000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु. 1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु. 800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1993

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/-, द्वितीय रु. 1000/-, तृतीय रु. 500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु. 300/- के दिये जायेंगे । अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 **अगस्त** 1993

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्ष :25 अंक :2
अप्रैल - जून 1993

- व्यवस्थापन मंडल -
डा. शिव प्रकाश गर्ग

श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी
श्री ललित कुमार
श्री राम निवास आर्य
श्री इन्द्र कुमार शर्मा
श्री दीप प्रकाश

- संपादन मंडल -
डा. जनार्दन स्वरूप

डा. गोविन्द प्रसाद कोठियाल
डा. कैलाश चन्द्र भल्ला
डा. दुर्गा प्रसाद पांडे
श्री हरि ओम मित्तल

- शुल्क -

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष	70 रु.	40 रु.

विदेश में
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष	125 रु.	95 रु.

अनुक्रमणिका

1. **संपादकीय**..... 3

2. **अंतरिक्षयान की ऊष्मीय अभिकल्पना**
   - डा. आनन्द कुमार शर्मा एवं प्रो. अनंत वि. पत्की..... 5

3. **कैंसर क्यों होता है?**
   - डा. रमेश सोमवंशी.....11

4. **समुद्री प्रदूषण निवारण में तेलभक्षी जीवाणु**
   - डा. राजनारायण पांडेय.....17

5. **तंत्रिका शल्य विज्ञान : ज्ञान तंतुओं पर नियंत्रण**
   - डा. वासुदेव प्रसाद यादव.....21

6. **स्टेनलेस इस्पात प्रकार एवं उपयोग**
   - डा. अरविन्द कुमार गुप्ता एवं अनूप कुमार.....24

7. **काग़ज़ उद्योग के जल-प्रदूषण का अध्ययन**
   - डा. आर.एन. शुक्ला.....31

8. **उड़न राख एवं पर्यावरण**
   - डा. घनश्याम गुप्ता, भानुप्रकाश एवं रवि प्रकाश.....35

9. **विकिरणशील समस्थानिकों की उपायदेयता**
   - (कु.) पूजा तिवारी.....39

10. **विलायक डि-एस्फाल्टिंग तकनीक**
    - डा. जी.एस. डंग.....43

*''वैज्ञानिक'' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारोंसे संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

*''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा. परिषद के पास सुरक्षित है।

*''वैज्ञानिक'' एवं हिं.वि.सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालय :
''वैज्ञानिक'', हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085

शुल्क भेजने का पता :
श्री ललित कुमार
कोषाध्यक्ष, हिं.वि.सा. परिषद
धात्विकी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085

11. नोबेल पुरस्कार किसे और क्यों
- डा. रजनी कांत चौधरी.....46

12. रासायनिक संयोग विज्ञान
- डा. अर्जुन दास.....48

13. कुवर्ण से वाष्प निक्षेपण द्वारा सुवर्ण
- के. के. सिन्हा 50

14. भा.प.अ. केन्द्र समाचार.....53

15. टिप्पणी

1. लिथोट्रिप्सी.....54
2. विश्व का सबसे मीठा पदार्थ.....55
3. स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एल्युमिनियम.....55
4. बायोटेक टमाटर.....57
5. चुंबक चिकित्सा.....58
6. मधुमेह और मेथी के बीज.....59
7. गर्भावस्था में गाय-भैंस की देखभाल.....59

16. बाल विज्ञान
- अद्भुत मछलियाँ.....61

संपादकीय

भूगर्भ जल की प्रतिपूर्त्ति

ग्रीष्म ऋतु आ गयी है और इसी के साथ देश के अनेक भागों में आरम्भ हो गयी है पीने के पानी की कमी। भूगर्भ स्थित जल का स्तर कुओं, बावड़ियों में गिरने लगा है; कुछ तो सूख भी चुके हैं। वर्षा ऋतु अभी दूर है।

गंगा-यमुना के दो-आब क्षेत्र में भी पानी का स्तर अनेक स्थानों पर नीचे जाने लगा है, फिर देश के अन्य भागों का कहना ही क्या, जहाँ इतनी अधिक छोटी-बड़ी सदा प्रवाहित नदियां भी नहीं हैं। काठियाबाड़ (काठ का बाड़ा) कभी जंगलों से भरा रहता था। आज जंगल कट गये हैं और वहाँ की सपाट भूमि में खेती होती है।

वर्षा ऋतु के बाद धरातल के नीचे जब तक पानी रहता है, ट्यूब वेल से खेती के लिए बहुत सारा पानी जल्दी-जल्दी निकाल लिया जाता है जिससे भूगर्भी जल का स्तर और भी नीचे चला जाता है।

उत्तर प्रदेश से लेकर बंगाल तक हिमाच्छादित हिमालय पर्वत अनेक छोटी-बड़ी नदियों का स्रोत है जिनमें पूरे वर्ष पानी रहता है, परन्तु ये नदियां हिमालय से निकल कर गंगा में जा मिलती हैं। गंगा नदी के दक्षिणी भाग में विंध्याचल से निकल कर सदा प्रवाहित नदियों की संख्या बहुत कम है, जिसके कारण ग्रीष्म ऋतु में मध्य भारत तक के संपूर्ण क्षेत्र में पानी की कमी हो जाती है। गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में वर्षा ऋतु को छोड़ कर अधिकांश स्थानों पर वर्ष भर पानी की कमी बनी ही रहती है।

दक्षिण भारत में हिमालय जैसा पानी का अक्षुण्ण स्रोत नहीं है। कृष्णा, काबेरी और गोदावरी जैसी थोड़ी-सी नदियाँ पश्चिमी घाटों और विंध्याचल के जंगलों से निकलती हैं और जब तक इनके स्रोतों के आसपास जंगल रहेंगे, इन नदियों में पानी बना रहेगा। अनेक स्थानों पर लकड़ी की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए पश्चिमी घाट और विंध्याचल के जंगल कटने शुरू हो गये हैं। एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी आ सकता है, जब जंगल इतने कम हो जाएं कि वहाँ पानी का स्रोत ही न रहे, तब धीरे-धीरे ये नदियाँ भी सूख सकती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थल में तो पानी की कमी पूरे वर्ष ही बनी रहती है। वहाँ पर कोई नदी भी नहीं है और वर्षा भी बहुत कम होती है। जो थोड़े-से पानी के स्रोत हैं, वे बहुत गहरे कुएं हैं जिनमें से एक घड़ा पानी निकालने के लिए महिलाएं दस मील दूरी तक से चलकर आती हैं।

पूर्व और पूर्वोत्तर भारत में परिस्थिति इतनी संकटपूर्ण नहीं है, फिर भी चिरापूंजी जैसे स्थान में जहाँ संसार भर में सबसे अधिक वर्षा (५०० इंच) पूरे वर्ष होती थी, जंगलों के कट जाने के कारण अब कम होनी आरम्भ हो गयी है।

इस प्रकार, इस देश के अधिकांश भागों में पानी की कमी, विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में महसूस की जाने लगी है। अब से ४०-५० वर्ष पहले तक यह परिस्थिति इतनी विकट नहीं थी। यह चित्र अब लगभग प्रत्येक वर्ष का हो

गया है, और इसमें भी मुसीबत यह है कि प्रतिवर्ष पानी का संकट बढ़ ही रहा है।

भूगर्भ में पानी का असीमित स्रोत नहीं होता है, अतः निकाले गये पानी की प्रतिपूर्ति की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

हमारे देश के अधिकांश भागों में वर्षा ऋतु लगभग तीन महीनों की होती है। इन्हीं तीन महीनों में भूगर्भीय जल की प्रतिपूर्ति भी हो सकती है। हम देखते हैं कि वर्षा ऋतु में सभी नदियों में प्रतिवर्ष बाढ़ आया करती है जो जनजीवन को हानि पहुँचाने के साथ-साथ, वर्षा के पानी को समुद्र में बहा ले जाती है। इससे भूमि का अपरदन भी होता है।

धरातल कठोर होता है, इस कारण उस पर वर्षा का पानी एकत्र होते ही छन कर नीचे जाने के बजाय, बह कर निकल जाता है। धरातल पर वृक्ष अपनी जड़ों से धरा में छिद्र बना देते हैं जिनके सहारे वर्षा का पानी रिस-रिस कर भूगर्भ में पहुँच जाता है। इसीलिए नदियों के स्रोत और भूगर्भीय जल की निरंतर प्रतिपूर्ति के लिए जंगलों का रहना अति आवश्यक है।

भूगर्भीय जल की प्रतिपूर्ति के लिए प्रत्येक गांव में हमें ऐसे वृक्ष लगाने चाहिए जिनकी जड़ें दूर-दूर तक और नीचे गहराई तक जाती हों। भारत भर में ऐसे दो वृक्ष, पीपल और वट (बरगद) सभी स्थानों पर उपलब्ध हैं। इन वृक्षों की हमारे देश में पूजा भी की जाती है, अतः इन्हें काटा नहीं जाता है। प्रत्येक गांव में आवासों के बीच, गाँव की जनसंख्या के अनुरूप उसकी पानी की आवश्यकतानुसार अधिक से अधिक संख्या में हमें वट और पीपल के वृक्ष लगाने चाहिए, विशेषतः उन गांवों में जहाँ के कुओं में पानी सूख जाता है। इन वृक्षों को खेतों में नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि इनके आसपास पैदावार नहीं होती है।

यह काम सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता है। सरकार के वृक्षारोपण कार्यक्रम में अशोक और नीलगिरि (यूकेलप्टस) को महत्व दिया जा रहा है। सदा हरे बने रहने वाले अशोक से वायु-प्रदूषण की रोकथाम में सहायता मिलती है और नीलगिरि से इमारती लकड़ी की आपूर्ति होती है, अतः ये दोनों प्रकार के वृक्ष भी आवश्यक हैं, परन्तु इन वृक्षों के बारे में यह कहा जाता है कि इनकी जड़ों द्वारा जितना पानी वर्षा ऋतु में धरती के नीचे पहुँचाया जाता है, उससे अधिक पानी ये स्वयं वर्ष भर में अपने लिए उपयोग कर लेते हैं, अतः भूगर्भीय जल की प्रतिपूर्ति इन वृक्षों से संभव नहीं है। इसके विपरीत, पीपल और वट के वृक्षों को बड़ा होने तक तो पानी देना पड़ता है, जो प्रायः सभी प्रकार की वनस्पति के लिए आवश्यक होता है, परन्तु वयस्क होने के बाद, प्रति वर्ष इनकी जड़ें बढ़ती रहती हैं और वर्ष भर की अपनी स्वयं की आवश्यकता से अधिक जल ये वर्षा ऋतु में धरती के गर्भ में पहुँचा देती हैं। वायु-प्रदुषण को कम करने में भी इन वृक्षों का पर्याप्त योगदान रहता है।

इस प्रकार, भूगर्भीय जल की प्रतिपूर्ति के लिए जनसामान्य को स्वयं ही अधिक से अधिक संख्या में पीपल और वट के वृक्षों को अपने-अपने गांव में लगाना चाहिए। आज लगाये गये वृक्षों का लाभ लगभग पन्द्रह वर्षों के बाद उनके बड़े होने पर प्राप्त होने लगेगा।

- जनार्दन स्वरूप.

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

अंतरिक्षयान की ऊष्मीय अभिकल्पना

डा. आनन्द कुमार शर्मा वैज्ञानिक, ऊष्मीय तंत्र प्रभाग, एवं
प्रो. अनन्त वि. पत्की, निदेशक, यांत्रिक तंत्र समूह
इसरो उपग्रह केन्द्र ,विमानपुरा, बैंगलोर - 560 017

अंतरिक्षयान एक कर्कश वातावरण में परिचालित होता है। उसके एक ओर जहाँ सीधा तपता हुआ सूर्य होता है, वहीं दूसरी ओर ठंडा, गहरा अंतरिक्ष जिसके फलस्वरूप यान की प्रदीपन और छाया वाली दिशा में कई सौ डिग्री की तापमान प्रवणता स्थापित हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसी ऊष्मीय अभिकल्पना का विकास करना जिससे अंतरिक्षयान के सभी आन्तरिक घटकों को लगभग कमरे के तापमान पर बनाये रखा जा सके, एक बड़ी चुनौती है। प्रस्तुत लेख में भूस्थिर (जियोस्टेशनरी) अंतरिक्षयान की ऊष्मीय अभिकल्पना पर प्रकाश डाला गया है। इसे अन्य उद्योगों में भी सरलता से अपनाया जा सकता है।

मानव शरीर की भाँति एक अंतरिक्षयान भी अपने वातावरण के प्रति अत्यंत सूक्ष्मग्राही होता है। इसके विभिन्न उपतंत्र मात्र एक निश्चित तापमान सीमाओं में ही पूर्ण दक्षता से कार्य कर सकते हैं, जिनका विस्तार सारणी-1 में दिया गया है। जैसे ही इन तापमान सीमाओं का उल्लंघन होता है, या तो उनकी कार्यक्षमता का ह्रास हो जाता है, अथवा उनका जीवनकाल कम हो जाता है। कुछ परिस्थितियों में वे स्थायी रूप से नष्ट भी हो सकते हैं, इसलिए एक ऐसी ऊष्मीय नियंत्रण युक्ति का विकास करना अति आवश्यक हो जाता है, जो कक्षा में उपग्रह के विभिन्न घटकों के उचित प्रचालन-तापमान सुनिश्चित कर सके।

भार में कटौती अंतरिक्षयान अभिकल्पना का एक महत्वपूर्ण मानदंड है, क्योंकि अंतरिक्षयान प्रमोचन एक अत्यधिक मँहगी प्रक्रिया है तथा प्रमोचनयान की उत्थापन सामर्थ्य सीमित होती है। इस कटौती के फलस्वरूप, उपग्रह की भारयोग (पेलोड) क्षमता अथवा उसमें अधिक ईंधन भरकर उसका जीवनकाल बढ़ाया जा सकता है।

अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के लिए भूतल प्रयोगों की अपेक्षा अधिक कठोर मानदंड एवं उन्नत नियंत्रण की आवश्यकता होती है, क्योंकि अंतरिक्षयान की मरम्मत करना सम्भव नहीं है, तथा अंतरिक्षयान को अत्यंत दुरूह परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जैसे अति उच्च निर्वात, परावैंगनी विकिरण, उच्च ऊर्जा कणों का वर्षण एवं चरम तापमानों का चक्रण। अतः अंतरिक्षयान के लिए मात्र ऐसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है जिनका निष्पादन पूर्णतः प्रमाणित हो। दोषयुक्त तकनीक से न केवल किसी तंत्र विशेष की कार्यक्षमता प्रभावित होती है, अपितु सम्पूर्ण अभियान के निष्फल होने की आशंका भी बढ़ जाती है।

सारणी - 1
प्रतिरूपी उपतंत्रों एवं उपकरणों की तापमान सीमाएं

उपतंत्र/उपकरण तापमान सीमाएं, न्यूनतम/अधिकतम (^{o}से.)	अपरिचालित	परिचालित
संचार		
अभिग्राही	-30/+55	+10/+45
निवेश बहुसंकेतक	-30/+55	-10/+30
निर्गम बहुसंकेतक	-30/+55	-10/+40
प्रगामी तरंग नलिका प्रवर्धक	-30/+55	-10/+55
एन्टेना	-170/+90	-170/+90
विद्युत शक्ति		
सौर व्यूह पंख	-160/+80	-160/+80
बैटरी	-10/+25	0/+25
पार्श्व समुच्चय	-45/+65	-45/+65
अभिवृत्ति नियंत्रण		
पृथ्वी/सूर्य संवेदक	-30/+55	-30/+50
कोणीय दर समुच्चय	-30/+55	+1/+55
संवेग चक्र	-15/+45	+1/+45
नोदन (प्रोपल्शन)		
ठोस अपभू मोटर	-5/+35	-
नोदक टैंक	-10/+50	+10/+50
प्रणोदक उत्प्रेरक शय्या (थ्रस्टर केटालिस्ट बेड)	-10/+120	-10/+120
संरचना		
अग्निक यंत्रावली (प्रोटेकनिक मेकेनिज्म)	-170/+55	-115/+55
पृथक्करण क्लैम्प	-40/+40	-15/+40

अभिकल्पना दर्शन (डिजाइन फिलास्फी)

अंतरिक्षयान के ऊष्मीय नियंत्रण का सिद्धान्त एक सरल ऊर्जा संतुलन समीकरण पर आधारित है। साम्यावस्था में उपग्रह द्वारा अवशोषित तथा उसके आन्तरिक घटकों द्वारा उत्पन्न ऊर्जा का योग उसके द्वारा विकिरित ऊर्जा के बराबर होता है।

$$Q_{अव} + Q_{आन्त} = Q_{विकि}$$

जहाँ $Q_{अव}$, $Q_{आन्त}$ तथा $Q_{विकि}$ क्रमशः उपग्रह द्वारा अवशोषित, आन्तरिक जनित तथा विकिरण की गयी ऊर्जा की दरें हैं।

अंतरिक्षयान द्वारा अवशोषित ऊर्जा के अन्तर्गत अवशोषित सौर ऊर्जा, परावर्तित सौर किरणें और पृथ्वी (अथवा किसी अन्य ग्रह) द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा सम्मिलित है। आन्तरिक जनित ऊर्जा मुख्यतः वैद्युत और इलेक्ट्रानिक घटकों के परिचालन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई ऊष्मा है, जबकि विकिरण ऊर्जा उपग्रह की बाहरी सतहों द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा है। इन के अतिरिक्त, उपग्रह के आन्तरिक अंगों में ऊष्मा का परस्पर आदान-प्रदान अंशतः विकिरण और चालन द्वारा भी होता है।

सरलता की दृष्टि से हम अपने विषय को मात्र भूस्थिर उपग्रहों की ऊष्मीय अभिकल्पना तक ही सीमित रखेंगे, क्योंकि ये अपेक्षाकृत एक पूर्वानुमानित वातावरण में परिचालित होते हैं। इन पर भूश्विति (एल्बिडो) एवं भूदीप्ति (अर्थ शाइन) ऊर्जाओं का प्रभाव नहीं होता है। अब यदि हम यह कल्पना करें कि उपग्रह के आन्तरिक घटकों के परिचालन से किसी प्रकार की ऊर्जा का सृजन नहीं होता, तो उपरोक्त समीकरण को अंतरिक्षयान की अवशोषकता व उत्सर्जकता के रूप में निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है:

$$\alpha \; S \; Ap = \Sigma \sigma A T^4$$

अथवा

$$T = \left[\frac{S}{\sigma} \; \frac{Ap}{A} \; \frac{\alpha}{\Sigma} \right]^{1/4}$$

इस समीकरण में T अंतरिक्षयान का साम्यावस्था में तापमान (केल्विन); S, सौर स्थिरांक (1353 वाट/वर्ग मी.); σ स्टीफन स्थिरांक (57.6×10^{-9} वाट/वर्ग मी.); अवशोषण गुणांक (सौर ऊर्जा); Σ उत्सर्जन गुणांक; α (अवरक्त); Ap, अंतरिक्षयान का प्रक्षेपित क्षेत्रफल (प्रोजेक्टेड एरिया, वर्ग मी.) तथा A, अंतरिक्षयान का सम्पूर्ण क्षेत्रफल है। क्योंकि S, Ap एवं A स्थिरांक हैं, यह समीकरण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि साम्यावस्था में अंतरिक्षयान का तापमान उसके घटकों के α/Σ सम्बन्धों से नियंत्रित होता है। कुछ प्रमुख ऊष्मीय नियंत्रक पदार्थों/सतहों के प्रकाशीय गुण सारणी-2 में दिये गये हैं।

अवशोषकता से हमारा तात्पर्य सम्पूर्ण सौर विकिरणों (एक्स रे, पराबैंगनी, दृश्य, अवरक्त, रेडियो आवृति आदि) से है, जबकि उत्सर्जकता केवल अवरक्त बैंड तक ही प्रतिबंधित है, क्योंकि ऊष्मीय विकिरण प्रधानतः अवरक्त क्षेत्र में ही होता है।

सारणी - 2

प्रमुख ऊष्मीय नियंत्रक पदार्थों/सतहों के प्रकाशीय गुण

पदार्थ सतह	सौर अवशोषणांक (α)	अवरक्त उत्सर्जनांक (Σ)
सुदृढ़ सौर परावर्तक	0.08	0.80
नम्य सौर परावर्तक	0.10	0.78
श्वेत प्रलेप	0.20	0.85
श्याम प्रलेप	0.92	0.90
एल्युमिनियम प्रलेप	0.28	0.28
एनोडीकृत एल्युमिनियम	0.31	0.77
क्रोमीकृत एल्युमिनियम	0.30	0.10
श्याम क्रोमीकृत मेग्निशियम	0.92	0.84
श्याम एनोडीकृत मेग्निशियम	0.94	0.92
एनोडीकृत टाइटेनियम	0.48	0.22
चकासित (पालिश्ड) एल्युमिनियम	0.15	0.05
चकासित जरमेनियम	0.56	0.05
स्वर्ण लेपन	0.19	0.03
श्याम निकेल लेपन	0.90	0.86
केप्टान (25माइक्रोन)	0.27	0.68
एल्युमिनित केप्टान	0.13	0.04
माइलर	0.13	0.04

सौर विकिरण

अंतरिक्षयान की ऊष्मीय अभिकल्पना के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने से पहले सौर वर्णक्रम की जानकारी ले लेना अति आवश्यक है। चित्र-1 में सौर ऊर्जा का वर्णक्रम दर्शाया गया है। लगभग 7% सौर ऊर्जा, पराबैंगनी (0.38 माइक्रोन से कम), 45.5% दृश्य (0.38-0.78 माइक्रोन), तथा 47.5% अवरक्त तथा आगे के तरंगदैर्घ्य क्षेत्र में बिखरी होती है।

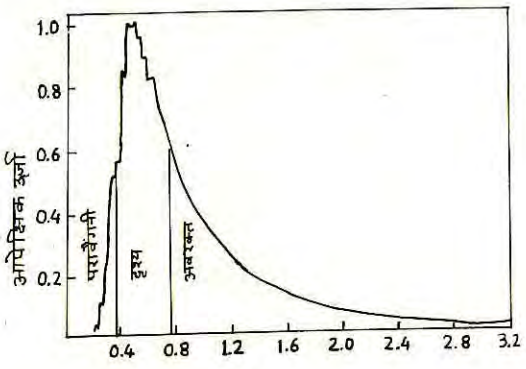

तरंग दैर्ध्य (माइक्रान)
चित्र - 1. सौर वर्णक्रम

किसी पदार्थ या विलेप को ऊष्मीय नियंत्रण के लिए चुनने से पूर्व उसके वर्णक्रम का अध्ययन कर लेना चाहिए, क्योंकि कुछ पदार्थ लगभग सभी आपतित ऊर्जा को अवशोषित कर लेते हैं, जबकि दूसरे, दृश्य भाग में परावर्तित और अवरक्त भाग में अवशोषित अथवा इसके विपरीत, कर सकते हैं। चित्र-2 में कुछ चुने हुए पदार्थों का निरूपित वर्णक्रम प्रस्तुत किया गया है।

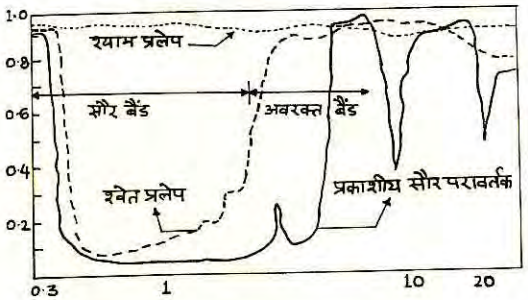

तरंग दैर्ध्य (माइक्रो मी.)
चित्र - 2. कुछ पदार्थों का निरूपित वर्णक्रम

ऊष्मीय नियंत्रण विधियाँ

ऊष्मीय नियंत्रण विधियों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, निष्क्रिय (पैसिव) ऊष्मीय नियंत्रण एवं सक्रिय (एक्टिव) ऊष्मीय नियंत्रण।

निष्क्रिय ऊष्मीय नियंत्रण विधि में इसका प्रत्येक भाग सापेक्ष रूप से अचल रहता है तथा इसके संचालन के लिए किसी भी प्रकार की बाह्य ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके विपरीत, सक्रिय ऊष्मीय नियंत्रण युक्ति में उपयोग में आने वाले सचल भागों के साथ ही साथ, उसके संचालन के लिए बाह्य ऊर्जा की आवश्यकता भी सम्भव है।

निष्क्रिय ऊष्मीय नियंत्रण विधि तापमान नियंत्रण के लिए अपने घटकों के प्रकाशीय गुणों का उपयोग करती है, इसलिए यह तापमान नियंत्रण की एक सरल, सामान्यतः सस्ती एवं अधिक विश्वसनीय विधि है। इसका उपयोग सारभूत रूप में सभी अंतरिक्ष अभियानों में किया गया है।

निष्क्रिय नियंत्रण : विलेप एवं सतहें

अंतरिक्षयान के ऊष्मीय संतुलन में ऊष्मीय नियंत्रक विलेप एवं सतहें मुख्य भूमिका निभाते हैं। ऊष्मा नियंत्रक सतहों को चार प्रमुख समूहों में रखा जा सकता है:

सौर परावर्तक : सौर परावर्तक सतहें आपतित सौर ऊर्जा के अधिकांश भाग को परावर्तित करके वापिस लौटा देती हैं। इन्हें अल्प α/Σ अनुपात से अभिलक्षित किया जाता है। इनका प्रयोग उपग्रह के उच्च ऊर्जा विसर्जन वाले क्षेत्रों में उनका तापमान बढ़ने से रोकने के लिए किया जाता है। इस प्रकार की सतहों के मुख्य उदाहरण हैं, श्वेत प्रलेप एवं प्रकाशीय सौर परावर्तक।

सौर अवशोषक : इस प्रकार की सतहें अधिकांश आपतित सौर किरणों को अवशोषित कर लेती हैं। इस प्रकार इनका α मान अधिक व Σ मान कम होता है। चकासित (पालिश्ड) धातु सतहें इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।

सपाट परावर्तक : इस प्रकार की सतहें अपने ऊपर पड़ने वाली लगभग सम्पूर्ण सौर ऊर्जा को परावर्तित कर देती हैं। इस प्रकार, इनके α व Σ, दोनों के मान बहुत कम होते हैं। इस प्रकार की सतहों को विकसित करना बहुत कठिन होता है। उदाहरण के लिए, एल्युमिनियम प्रलेप।

सपाट अवशोषक : ये सतहें लगभग सम्पूर्ण आपतित ऊर्जा को अवशोषित कर लेती हैं। इन्हें उच्च α व उच्च Σ मानों द्वारा अभिलक्षित किया जाता है, $\alpha \sim \Sigma \sim 1$, उदाहरण के लिए, श्याम विलेप या प्रलेप। अंतरिक्षयान के लगभग सभी आन्तरिक घटकों पर परस्पर उन्नत विकिरण युग्मीकरण प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की सतहों का प्रयोग किया जाता है, ताकि उन सभी का तापभाग लगभग एक समान बनाये रखा जा सके।

बहुस्तरीय ऊष्मारोधन

बहुस्तरीय ऊष्मारोधन युक्ति अंतरिक्षयान के सक्षम ताप नियंत्रण तत्त्व के रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

अंतरिक्षयान का ऊष्मीय नियंत्रण प्रधानतः उसे बहुस्तरीय ऊष्मारोधी द्वारा अंतरिक्ष से पृथक करके और उसकी आन्तरिक जनित ऊर्जा को प्रकाशीय सौर परावर्तकों (विकिरक खिड़की) द्वारा उत्सर्जित करके प्राप्त किया जाता है।

बहुस्तरीय रोधक कम्बल (ब्लैंकेट) महीन विकिरण कवचों की समानान्तर तहों का बना होता है। प्रत्येक दो विकिरण कवचों के मध्य एक अल्प संचालक अंतरालक (स्पेसर) की परत लगी होती है। विकिरण कवच की प्रत्येक तह गर्म सतह से ग्रहण किये गये विकिरण का अधिकांश भाग पुनः परावर्तित करके उसे वापिस लौटा देती है, जबकि अंतरालक दो विकिरण कवचों के सतत् स्पर्श के परिणामस्वरूप होने वाले ऊष्मा के बहाव (स्पर्श चालन) को रोकता है।

एक परम्परागत बहुस्तरीय रोधक कम्बल माइलर और अंतरालक की एक के ऊपर एक यथाक्रम दस तहों का बना होता है। माइलर लगभग 6.5 माइक्रोन मोटी दोनों ओर एल्युमिनित एक पालीमाइड फिल्म होती है, जबकि अंतरालक लगभग 150 माइक्रोन मोटी एक पालिस्टर जाली होती है। इन तहों के ऊपर व नीचे, दोनों ओर 25/50 माइक्रोन मोटी पालीमाइड फिल्म, केप्टान लगा दी जाती है जो कम्बल को आपेक्षित यांत्रिक सामर्थ्य प्रदान करती है। केप्टान की अंतरिक्ष में खुली सतह एल्युमिनित नहीं होती, जबकि अन्दर की सतहें एल्युमिनित होती हैं। इस कम्बल को नायलोन के धागे और बटन की सहायता से सिल दिया जाता है और वेलक्रो फीते व आसंजक के माध्यम से उपग्रह की सतहों पर आरोपित कर दिया जाता है। इस प्रकार के एक दस स्तरीय कम्बल की क्षमता जिसकी कुल मोटाई लगभग 3 मि.मी. होती है, एक 500 मि.मी. मोटे परम्परागत ऊष्मारोधक पदार्थ के तुल्य होती है। एक प्रतिरूपी बहुस्तरीय कम्बल का व्यवस्थात्मक आरेख चित्र-3 में प्रदर्शित किया गया है।

प्रकाशीय सौर परावर्तक

प्रकाशीय सौर परावर्तकों का उपयोग अंतरिक्षयान के विभिन्न घटकों द्वारा जनित ऊर्जा को बाह्य आकाश में उत्सर्जित करने के लिए किया जाता है। सौर परावर्तकों को काँच (अथवा क्वार्ट्ज़) के महीन पत्र पर निर्वात वाष्पीकरण विधि द्वारा एक ओर चाँदी की पतली परत चढ़ाकर बनाया जाता है। क्योंकि चाँदी का काँच पर सीधा आसंजन संतोषजनक नहीं होता है, काँच और चाँदी की परत के मध्य टेनटेलम पेन्टाआक्साइड़ (Ta_2O_5) की एक आबंधन परत लगा दी जाती है। कुछ विशेष प्रकार के सौर परावर्तकों में उन्नत ऊष्मा चालन को सुनिश्चित करने के लिए परतीकृत काँच के दोनों ओर इंडियम टिन आक्साइड (ITO) का विलेप चढ़ा दिया जाता है। एक प्रतिरूपी

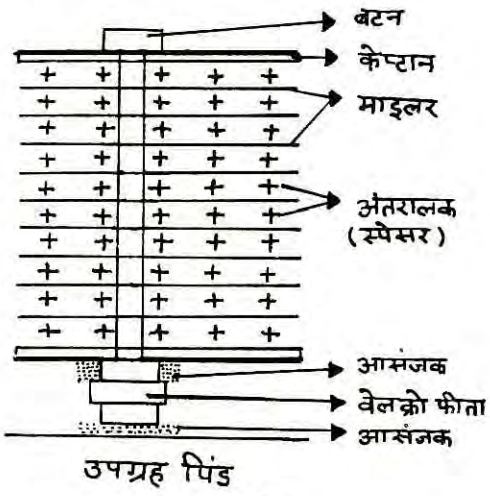

उपग्रह पिंड

चित्र - 3. बहुस्तरीय ऊष्मारोधी कम्बल का विन्यास

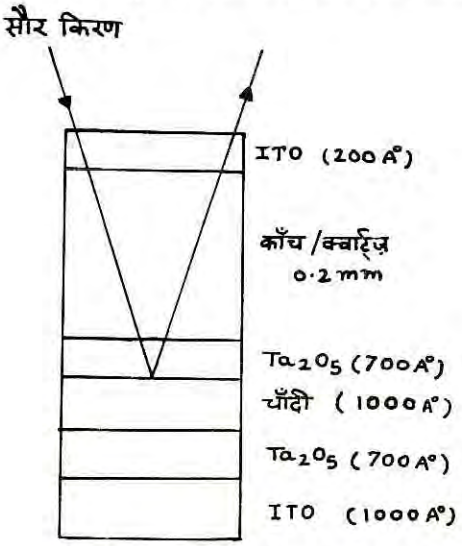

चित्र - 4. प्रकाशीय सौर परावर्तक का व्यवस्थात्मक अनुप्रस्थ परिच्छेद

सौर परावर्तक का व्यवस्थात्मक निरूपण चित्र -4 में प्रस्तुत किया गया है।

अंतरिक्षयान के उपयोग में दो भिन्न प्रकार के सौर परावर्तकों को प्रयोग में लाया जाता है: सुदृढ़ सौर परावर्तक एवं नम्य (लचीले) सौर परावर्तक।

सुदृढ़ सौर परावर्तकों का प्रयोग अंतरिक्षयान के समतल क्षेत्रों पर तथा नम्य सौर परावर्तकों का प्रयोग वक्र सतहों पर किया जाता है । नम्य सौर परावर्तकों के प्रकाशीय गुणों का अवक्रमण (डिग्रेडेशन), सुदृढ़ सौर परावर्तकों की तुलना में कहीं अधिक होता है, इसलिए इनका प्रयोग केवल वक्र स्थानों तक ही सीमित रखा जाता है, क्योंकि वहाँ सुदृढ़ सौर परावर्तक आरोपित नहीं किये जा सकते । नम्य सौर परावर्तकों में काँच के स्थान पर 125 माइक्रोन मोटी टेफलान पट्टी को आधार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। सौर परावर्तकों को एक उच्च ऊष्मा चालन आसंजक के द्वारा अंतरिक्षयान की बाहरी सतहों पर आबंधित कर दिया जाता है।

प्रकाशीय सौर परावर्तक, सौर परावर्तन एवं ऊष्मीय उत्सर्जन, दोनों का कार्य करते हैं। सौर परावर्तकों को द्वितीयक सतह दर्पण के रूप में भी जाना जाता है। चूँकि काँच सौर वर्णक्रम के अधिकांश भाग के लिए पारदर्शी होता है, सौर विकिरण काँच से होते हुए चाँदी की सतह (प्रभावी रूप से द्वितीयक सतह) तक पहुँचता है, जहाँ से वह परावर्तित होकर वापिस लौट जाता है। इसके साथ ही साथ, काँच अवरक्त वर्णक्रम में उत्तम उत्सर्जक भी है, अतः अंतरिक्षयान की आन्तरिक सर्जित ऊर्जा को आसंजक, इंडियम टिन आक्साइड एवं चाँदी की परत के रास्ते बाहर अंतरिक्ष में उत्सर्जित कर देता है।

स्वाभाविक रूप से प्रकाशीय सौर परावर्तक अन्य सामान्य तापमान नियंत्रक पदार्थों से कहीं अधिक मँहगे होते हैं, फिर भी इनका बहुधा प्रयोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि अंतरिक्षयान के सम्पूर्ण जीवनकाल में अन्य वैकल्पिक पदार्थों (जैसे श्वेत प्रलेप) की तुलना में इनके प्रकाशीय गुणों का अवक्रमण बहुत कम होता है। अवक्रमण मुख्य रूप से सौर वर्णक्रम में पदार्थ की परावर्तकता को प्रभावित करता है जो आंशिक रूप से स्वयं सौर विकिरण (पराबैंगनी और आवेशित कणों) तथा अंतरिक्षयान द्वारा उत्सर्जित संदूषकों के कारण होता है। संदूषक प्रमुख रूप से नोदनों के ज्वलन उत्पाद तथा बाह्य वातावरण में निर्वात होने के कारण कुछ पदार्थों से निकलने वाली गैसें होती हैं।

एक प्रतिरूपी भूस्थिर अंतरिक्षयान के 7 वर्ष के जीवनकाल में प्रकाशीय सौर परावर्तक एवं श्वेत प्रलेप के अवक्रमण के कुछ परिणाम नीचे दिये गये हैं:

प्रकाशीय गुण	**सौर परावर्तक**	**श्वेत प्रलेप**
	प्रारंभिक/अंतिम	प्रारंभिक/अंतिम
सौर अवशोषणांक (α)	0.08/0.15	0.20/0.58
अवरक्त उत्सर्जनांक (Σ)	0.80/0.80	0.85/0.85

प्रकाशीय सौर परावर्तकों का उपयोग अंतरिक्षयान के उच्च आन्तरिक ऊर्जा विसर्जन वाले क्षेत्रों में तापमान घटाने के लिए किया जाता है, जैसे प्रगामी तरंग नलिका प्रवर्धक (ट्रेवलिंग वेव ट्यूब एम्लीफायर), निर्गत बहुसंकेतक (आउटपुट मल्टीप्लेक्सर) एवं बैटरी।

विकिरक एवं ऊष्मा अपवाहक (रेडियेटर्स ऐण्ड हीट सिंक्स)

विकिरक प्रधानतः ऊष्मा परित्याग का एक साधन है, जबकि ऊष्मा अपवाहक को एक अस्थायी ऊष्मा संचायक और अंततः विसर्जन करने की युक्ति कहा जा सकता है।

एक त्रि-अक्षीय स्थायीकृत अंतरिक्षयान के विकिरक पैनल सामान्यतः उत्तरी या दक्षिणी फलक में स्थित होते हैं, ताकि वे वहाँ तिरछे रूप में सौर किरणों को ग्रहण कर सकें, जबकि एक प्रचक्रण स्थायीकृत उपग्रह में ये पैनल प्रायः ड्रम के मध्यच्छत (मिडरिफ आफ ड्रम) में लगाये जाते हैं, जहाँ उन पर अधिकतम से शून्य के बीच बदलता हुआ सौर प्रदीपन पड़ता रहे। ऊष्मा स्रोत को विकिरक की आन्तरिक सतह से जोड़ दिया जाता है। विकिरक की आन्तरिक सतह पर सामान्यतः श्याम प्रलेप कर दिया जाता है, ताकि वह ऊष्मा स्रोत से एक अच्छा विकिरण युग्मीकरण सम्बंध स्थापित कर सके, जबकि इसकी बाहरी सतह पर प्रकाशीय सौर परावर्तक लगा दिये जाते हैं जिससे वह ग्रहण की गयी ऊर्जा को बाह्य अंतरिक्ष में उत्सर्जित कर सके।

ऊष्मा अपवाहक, विद्युत संघनित्र की भांति एक ऊष्मा संघनित्र का कार्य करता है। यह पहले ऊष्मा-स्रोत से ऊष्मा अवशोषित करके अपने सर्व आयतन में फैला लेता है और अंततः उसका दूसरी संरचनाओं (जैसे विकिरक) में विसर्जन कर देता है। धातुएं जो ऊष्मा की उन्नत सुचालक होती हैं, सामान्यतः उत्तम अपवाहक भी होती हैं। अल्प घनत्व वाली एल्युमिनियम धातु इस प्रयोजन के लिए सर्वथा उपयुक्त है। ऊष्मा अपवाहक किसी घटक का भाग या स्वयं अंतरिक्षयान की संरचना भी हो सकती है, उदाहरणतः उच्च शक्ति प्रगामी तरंग नलिका प्रवर्धक, जो स्वयं सीधे अंतरिक्ष में विकिरण करता है।

ऊष्मा अपवाहक विशेष रूप से उन उपकरणों के लिए उपयोगी होता है जो परिचालन अवस्था में उच्च ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, जैसे ठोस अवस्था शक्ति प्रवर्धक, सूक्ष्म इलैक्ट्रानिक रेडियो आवृति घटक आदि। अपवाहक न केवल इनसे परिचालित अवस्था में ऊष्मा अवशोषित करता है, बल्कि उनके बन्द होने की दशा में कुछ ऊष्मा उन्हें लौटा भी देता है, ताकि उनको अति शीतलन से बचाया जा सके।

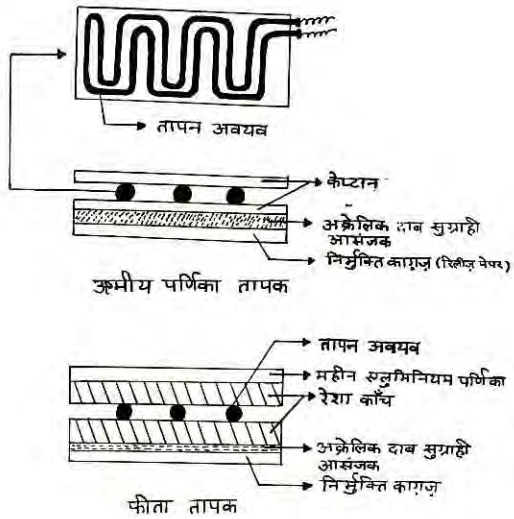

चित्र - 5. पर्णिका एवं फीता तापकों का विन्यास

सक्रिय नियंत्रण - तापक

गत दो दशकों में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के विकास एवं प्रसार में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। पहले उपग्रहों में मात्र निष्क्रिय विधियों द्वारा ही उचित परिचालन तापमान प्राप्त कर लिये जाते थे, लेकिन जैसे-जैसे उपग्रहों की क्षमता व जटिलता बढ़ती जा रही है, उनके ऊष्मीय नियंत्रण के लिए सक्रिय अवयवों की सहायता लेना अनिवार्य होता जा रहा है।

सक्रिय ऊष्मीय नियंत्रण का सबसे सरल उदाहरण एक साधारण विद्युत प्रतिरोधी तापक है, जिसे सूक्ष्माकार के कारण किसी उपकरण विशेष के भाग पर तापमान बनाये रखने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

तापकों का प्रयोग विशेषतः अंतरिक्षयान के अभिवृत्ति नियंत्रण नोंदकों (एटीट्यूड कन्ट्रोल प्रोपेलेन्ट) को गर्म रखने के लिए किया जाता है, उदाहरण के लिए हाइड्राजिन ($NH_2 . NH_2$) जो कि संचार उपग्रहों के प्रक्रिया नियंत्रण में एक अत्यधिक प्रचलित एकल नोदक है, लगभग 0^0 से. पर जमने लगता है। इसका तापमान $5\text{-}50^0$ से. बनाये रखने के लिए नोदक टैंकों को बहुस्तरीय ऊष्मारोधी से ढक दिया जाता है तथा ईंधन लाइनों एवं वाल्वों पर तापक लपेट दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब कुछ उपकरण परिचालन में नहीं होते, तब उनको प्रशीतन से बचाने के लिए भी तापकों का उपयोग किया जाता है, उदाहरण के लिए प्रगामी तरंग नलिका प्रवर्धक, जिसका तापमान ग्रहण के समय अपरिचालित अवस्था में बहुत नीचे गिर जाता है।

अंतरिक्षयानों में प्रयोग के लिए दो प्रकार के तापकों का उपयोग किया जाता है, ऊष्मीय पर्णिका तापक (थर्मोफायल हीटर), एवं फीता तापक (टेप हीटर)।

ऊष्मीय पर्णिका तापक दोनों ओर से ऊष्मारोधी परत द्वारा पटलिट (लेमिनेटेड) किये गये एक महीन नम्य निक्षारित (एच्ड) पर्णिका तापन अवयव का बना होता है। तापन अवयव सामान्यतः नाईक्रोम मिश्रधातु एवं ऊष्मारोधी परत, एक पालीमाइड फिल्म (केप्टान) होती है। तापक के पृष्ठ भाग में दाब सुग्राही आसंजक लगा होता है, जिसकी सहायता से इसे अंतरिक्षयान की इच्छित सतह पर आरोपित कर दिया जाता है। पर्णिका तापक विविध आकारों एवं प्रतिरोधों में उपलब्ध है। इनका उपयोग बहुत और लगभग सभी समतल क्षेत्रों में किया जाता है।

फीता तापक एनेमलित तापन अवयवों को दोनों ओर महीन नम्य रेशा-काँच में सैंडविच करके बनाये जाते हैं। इनके ऊपरी भाग में महीन एल्युमिनियम पर्णिका और निचले भाग में एक्रेलिक आसंजक लगा होता है। पर्णिका तापकों की अपेक्षा फीता तापक अधिक नम्य होते हैं, लेकिन कक्षा में इनका निष्पादन अधिक प्रमाणित नहीं है, इसलिए इनका उपयोग प्रमुख रूप से नलिकाकार सतहों पर किया जाता है, जैसे प्रतिक्रिया नियंत्रण तंत्र, साहुल सूत्रों (प्लम्ब लाइंस) तथा परिवर्ती आकृति के अन्य घटक ।

पर्णिका एवं फीता, दोनों प्रकार के तापकों का विन्यास चित्र-5 में दिखाया गया है।

सक्रिय ऊष्मीय नियंत्रण प्रणाली के कुछ नवीनतम विकास ऊष्मा नली विकिरक, प्रफलक (लूवर) समतापी ऊष्मक, हाइड्राइड शीतलक एवं निम्नतापी प्रशीतक हैं।

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

कैन्सर क्यों होता है?

डा. रमेश सोमवंशी वरिष्ठ, वैज्ञानिक (पैथोलोजिस्ट)
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान
मुक्तेश्वर - कुमाऊँ - 2631 38 (नैनीताल)

बचपन से लेकर वयस्कता तक विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं के प्रगुणन से हमारे शरीर की वृद्धि होती है। वयस्कता में यह वृद्धि लगभग रुक जाती है। शरीर में कोई घाव होने पर या हड्डी टूट जाने पर आसपास की कोशिकाएं प्रगुणन द्वारा उसे भर देती हैं। शरीर की यह वृद्धि नियंत्रित और आवश्यकतानुसार ही होती है। अनियंत्रित कोशिका-प्रगुणन एक घातक रोग है जिसे कर्करोग (कैन्सर) कहते हैं। इसके अनेक कारण सामने आये हैं, फिर भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कैन्सर क्यों होता है। कैन्सर होने के बारे में उपलब्ध जानकारी का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

कैन्सर के कारण गूढ़ हैं और अधिकांश कैन्सरों के कारण अज्ञात हैं। सामान्य कोशिकाओं में वृद्धि-नियंत्रक प्रक्रिया द्वारा वृद्धि व विभेदीकरण सम्पन्न होता है। इन कोशिकाओं का कैन्सर कोशिका में परिवर्तन समय-बद्धता, आयु तथा बहु-अवस्थाओं पर निर्भर करता है। कैन्सर के विकास तथा वृद्धि के लिए अनेक भौतिक, रासायनिक तथा जैविक कारक सम्बंधित पाये गये हैं। ये कारक या तो "प्रारंभिक" (Initiator) या "प्रवर्तक" (Promoter) अथवा दोनों प्रकार के कार्य करते हैं। हाल के वर्षों में प्रयोगात्मक पशुओं (अंतः-पात्र) और ऊतक सम्वर्धन (बाह्य-पात्र) प्रतिरूपों में कैन्सर के कारणों और विकृतिजनन की गूढ़ता को खोजने हेतु विस्तृत स्तर पर कार्य हुए हैं। यद्यपि इन से हमारे ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार तो हुआ है, परन्तु निश्चित या यथार्थ कारण अभी भी ज्ञात नहीं हैं। प्रस्तुत लेख में इन मूलभूत प्रक्रियाओं व कारकों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है। सुविधा हेतु कैन्सर के कारकों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

1 - आनुवंशिक कारक
2 - बाह्य कारक

यह स्पष्ट करना उचित होगा कि अधिकांश दशाओं में उपर्युक्त दोनों कारक अलग-अलग नहीं, अपितु संयुक्त प्रभाव द्वारा कैन्सर का विकास करते हैं। कैन्सर की उत्पत्ति एक जटिल प्रक्रिया है तथा इसे समझने के लिए आधारभूत प्रक्रिया तथा कारकों को समझना नितांत आवश्यक है।

कैन्सर विज्ञान में प्रयुक्त जटिल तकनीकी शब्दावली

अर्बुदशास्त्र में सामान्यता ट्यूमर (रसौली), नियो-प्लाज्म (कर्करोग), कैन्सर (दुर्दम रसौली या कर्करोग) आदि शब्दों का प्रयोग होता है। ये शब्द लगभग पर्यायवाची हैं। कम हानिकारक रसौली-सुदम तथा घातक रसौली-दुर्दम में वर्गीकृत की गयी हैं। प्रमुख ऊतक तथा उनकी कैन्सर शब्दावली निम्न है:

ऊतक	सुदम	दुर्दम
उपकला कोशिकाएं	पैपीलोमा	कर्सिनोमा
ग्रंथि उपकला कोशिकाएं	एडीनोमा	एडीनोकार्सिनोमा
संयोजी ऊतक	फाइब्रोमा	सार्कोमा
मिक्सोमेटस ऊतक	मिक्सोमा	मिक्सोसार्कोमा
वसीय कोशिका	लाइपोमा	लाइपोसार्कोमा
कार्टिलेज	कांड्रोमा	कांड्रोसार्कोमा
अस्थि	आस्टियोमा	आस्टियोसार्कोमा
अरेखित मांसपेशी	लियोमायोमा	लियोमायोसार्कोमा
रेखित मांसपेशी	रहैब्डोमायोमा	रहैब्डोमायोसार्कोमा
तंत्रिका ऊतक	न्यूरोफाइब्रोमा	न्यूरोफाइब्रोमासार्कोमा
सायनोविया(श्लेषक)	सायनोवियोमा	दुर्दम सायनोवियोमा
अस्थि मज्जाभ	-	मायलायड ल्यूकोसिस
लसीकाभ ऊतक	लिम्फोमा	लिम्फोसार्कोमा
मिलेनिन कोशिकाएं	मिलेनोमा	दुर्दम मिलेनोमा
रक्त वहनी	हिमेंजियोमा	हिमेंजजियोसार्कोमा
मिश्रित ऊतक	-	टिरेटोमा

विशिष्ट प्रकार की कोशिकाओं अथवा कभी-कभी खोजकर्ता वैज्ञानिकों के नाम पर कैन्सरों के नाम रखे गये हैं। रसौलियों के नामकरण ऊतक-शास्त्र के आधार पर किये जाते हैं।

कैन्सर के आनुवंशिक कारक

कैन्सर कोशिकाओं में आनुवंशिक गड़बड़ियों के पक्ष में अनेक तथ्य संग्रहीत हो गये हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कैन्सर का उद्भव एक असामान्य कोशिका द्वारा होता

है। इस असामान्य कोशा में आनुवंशिक रूपान्तरण होते हैं। इस प्रकार उत्परिवर्तित कोशा पहले असामान्य कोशिकाओं का एक समूह या "क्लोन" बनाती है जिनसे धीरे-धीरे कैन्सर विकसित होता है। अतः हम देखते हैं कि कैन्सर कोशिका में सर्वप्रथम एक उत्परिवर्तन या डी.एन.ए. क्रम में परिवर्तन या अधिआनुवंशिक परिवर्तन या वंशाणु (जीन) भावाकृति में बिना डी.एन.ए. क्रम में किसी बदलाव के परिवर्तन होते हैं। चूँकि कोशिकाओं में डी.एन.ए. विरोहरण की वंशानुगत क्षमता होती है, अतः कैन्सर उत्पन्न करने के लिए एक उत्परिवर्तन पर्याप्त नहीं होता है, अनेक उत्परिवर्तन होने आवश्यक होते हैं, तभी स्थायी वंशानुगत कैन्सरजनित रूपान्तरण सम्पन्न होते हैं।

(अ) कैन्सर में गुण-सूत्रीय विपथन

गुण-सूत्रीय रचना अध्ययनों द्वारा विदित हुआ है कि कैन्सर कोशिकाओं में गुणसूत्र अल्पता कुगुणितता (Aneuploidy) और विषम-गुणितता (Heteroploidy) रूपान्तरण जैसी असमान्यताएं पायी जाती हैं। उदाहरण हेतु मनुष्यों की मज्जाभ श्वेत रक्तता या माइलोजेनस ल्यूकीमिया (एक प्रकार का रक्त कैन्सर)। इसमें गुणसूत्र संख्या 9 के खण्ड का स्थानान्तरण, गुणसूत्र संख्या 22 पर हो जाता है। मानव ल्यूकीमिया में गुणसूत्र संख्या 8 और मानव के मैनिनजियोमा (मस्तिष्क आवरण रसौली) में गुणसूत्र संख्या 22 की अल्पता होना इस प्रकार के अन्य उदाहरण हैं। इसी प्रकार, कुत्तों के संचरित होने वाले वेनिरियल रसौली में 78 सामान्य गुणसूत्रों की अपेक्षा मात्र 59 गुणसूत्र पाये जाते हैं। कैन्सर के इन तथ्यों के कारण आनुवंशिक सिद्धान्त को बल मिला है।

(ब) आंकोजीन का योगदान

कैन्सर के आनुवंशिक उद्भव के प्रबल प्रमाण आंकोजीन (कर्कज वंशाणु) की खोज है जिसे सर्वप्रथम रेट्रोवाइरिडी परिवार के "राउस सार्कोमा विषाणु" में पता लगाया गया। ज्ञातव्य है कि राउस सार्कोमा विषाणु मुर्गियों में कैन्सर उत्पन्न करता है। विशिष्ट रेट्रो-विषाणुओं में तीन वंशाणु पाये जाते हैं जिन्हें gag (कैपसिड प्रोटीन की कोडिंग करना), pol (रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस की कोडिंग करना) और env (आवरण प्राटीन की कोडिंग करना) के नाम से जाना जाता है (चित्र-1 अ)। राउस सार्कोमा विषाणु में src नामक एक अतिरिक्त वंशाणु भी पाया जाता है जिसे कोशिकाओं के तीव्रता पूर्वक रूपान्तरण हेतु उत्तरदायी ठहराया जाता है। आंकोजीन को V-onc (वी-आंक) नाम से जाना जाता है। आंकोजीन पर हुए बाद के अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ कि कोशिकाओं में समरूपी जीनोमिक क्रम पाया जाता है जिसे "कोशिका-आंकोजीन" C-onc (सी-आंक) नाम से पुकारा गया। आंकोजीन की एक नवीनतम परिभाषा इस प्रकार दी गयी है :

अंकोजीन एक गुणसूत्री रचना जीन है जो कि प्रोटीन हेतु कूट या "कोड" रचती है, विकास में संरक्षित रहती है और सामान्य कोशिका में आवश्यक शरीर-क्रियात्मक क्रिया करती है तथा इसमें स्थितिज प्रभावी कैन्सरजनक निश्चायक बनने की क्षमता होती है।

इस परिभाषा के अनुसार, कोशिकीय आंकोजीन शब्द को "प्रोटो-आंकोजीन" शब्द द्वारा विस्थापित कर दिया गया। जिस का मूल अर्थ है "आंकोजीन का प्रजनक" (Progenitor of oncogene)। इस प्रकार, रसौली रचना रूपान्तरण हेतु अथवा सत्य आंकोजेनिक प्रकटीकरण हेतु एक "प्रोटो-आंकोजीन" द्वारा या तो उत्परिवर्तन, ट्रांसक्रिप्शनल सक्रियता, स्थानान्तरण, या वंशाणु विवर्धन होना आवश्यक है। ऐसे परिवर्तन किसी भी बाह्य अथवा वातावरणीय कारकों, जैसे कि विषाणुओं, विकिरण या विशिष्ट रसायनों द्वारा लाये जाते हैं।

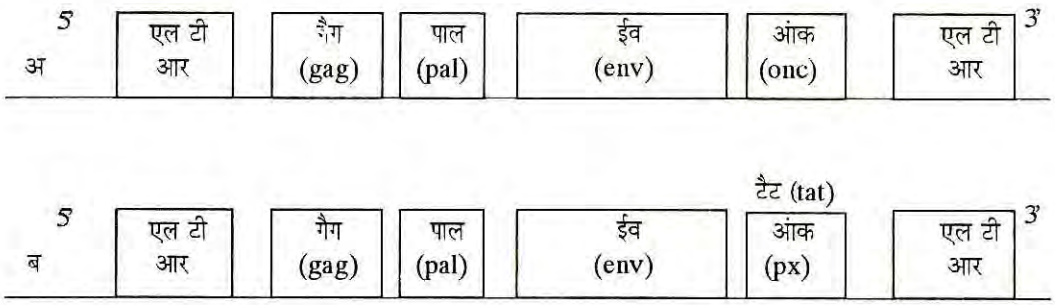

चित्र - 1. रेट्रोवाईरिडी परिवार के डी.एन.ए. विषाणु (अ) राउस सार्कोमा विषाणु और (ब) गो पशु ल्यूकोमिया विषाणु

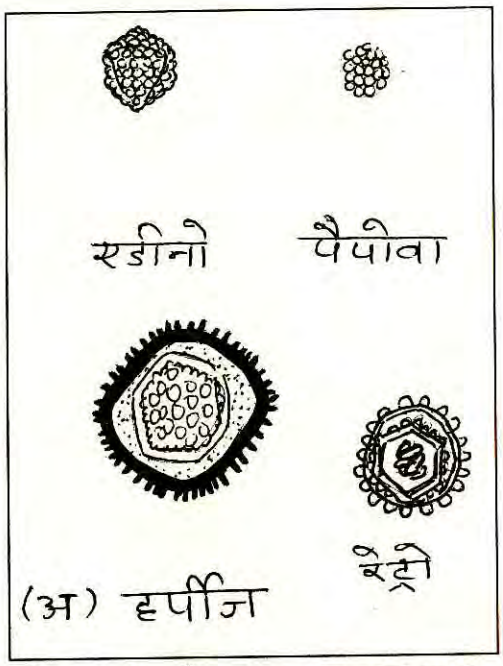

चित्र - 2. अ - डी.एन.ए. तथा ब - आर.एन.ए. कैन्सरजनक विषाणु

(स) अवसादक वंशाणु या प्रतिरोधी आंकोजीन का योगदान

ऐसी प्रबल धारणा है कि आंकोजीन के अतिरिक्त, ऐसे भी वंशाणु उत्पाद होते हैं जिनकी अनुपस्थिति में भी रसौली-रचना होती है। इस परिकल्पना के समर्थन में कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं :

यदाकदा जब रसौली कोशिकाएं सामान्य कोशिकाओं से बाह्य ऊतक संवर्धन में संकरण द्वारा संलयित होती हैं, तो उनकी रसौलीजनक क्षमता लुप्त हो जाती है, हांलाकि कुछ विशिष्ट दशाओं में कोशिकाओं की रसौलीजनक क्षमता पुनः प्राप्त हो जाती है। बाद की प्रकिया उस समय सम्पन्न होती है, जब कोई विशिष्ट गुणसूत्र या उसका कोई खण्ड हवसित हो जाता है जो कि यह संकेत देता है कि प्रतिरोधी-आंकोजीन मुक्त हुई थी।

प्रतिरोधी आंकोजीन की उपस्थिति का प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण वंशानुगत कैन्सर, जैसे कि मनुष्यों के रेटिनोब्लास्टोमा (रेटिना या नेत्रपटल की रसौली) द्वारा सुलभ हुआ था। इस दुर्दम नेत्र रोग में गुणसूत्र अल्पता पायी जाती है। इस प्रकार के संवेदनशील रोगियों के गुणसूत्र संख्या 13 की अल्पता या इसके अंश की अल्पता, या दोषयुक्त डी.एन.ए. क्रम पाया जाता है। यह दोष केवल कैन्सरग्रस्त कोशिकाओं में पाया जाता है। हमें तीसरा प्रमाण बाह्यपात्रीय माइलोमा साईटिक कोशिका लाइन, एम.एल.-60 द्वारा प्राप्त हुआ। इस की उच्च सक्रिय आंकोजीन को विभेदीकरण की अंतिम अवस्था में रेटीनाइक अम्ल उपचार द्वारा उद्भवित किया जाता है, अर्थात myc - आंकोजीन का अवसादन करते हैं। उपर्युक्त तथ्यों के निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि या तो आंकोजीन के सक्रियकरण या प्रतिरोधी आंकोजीन के अवसादन द्वारा रसौली रचना होती है।

रसौली-रचना के बाह्य कारक

प्रारंभ में यद्यपि अनेक भौतिक, रसायनिक, जैविक, प्रतिरक्षा तथा पोषक सम्बंधित कारकों को रसौली-रचना का कारण माना गया था, हाल में जैविक कारकों में विषाणु, रसायनों में पॉलीसाइक्लिक हाइड्रोकार्बन्स तथा भौतिक कारणों में आयनी-कृत विकिरण, कैन्सर के निर्विवाद कारण स्वीकार्य हुए हैं।

I- विषाणु : आंकोजीन के आविष्कार के पश्चात्, आंकोजेनिक विषाणुओं पर अधिक ध्यान दिया गया। डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए., दोनों प्रकार के विषाणु रसौली रचना करते पाये गये हैं। कैन्सर जनक विषाणुओं के दो प्रकार हैं, आंकोरना (Oncorna) तथा आंकोडना (Oncodna)।

(अ) आंकोरना विषाणु : ये आर.एन.ए. प्रकार के विषाणु हैं तथा सम-समूह बनाते हैं (चित्र-2 ब)। ये सांप, पक्षियों, चूहों, बिल्लियों तथा बन्दरों में पाये गये हैं। इन विषाणुओं को दो बड़े उपसमूहों, (1) ल्यूकीमिया/सार्कोमा विषाणु या तथाकथित "सी" विषाणुओं और (2) स्तन-कैन्सर विषाणुओं में विभाजित किया गया है।

1- ल्यूकीमिया/सार्कोमा विषाणु : इन अवस्थाओं को उत्पन्न करने वाले विषाणुओं के पक्षियों, मूषकों तथा बिल्लियों में सर्वाधिक अध्ययन किये गये हैं। अन्य प्रजातियों में अध्ययन चल रहे हैं। ल्यूकीमिया विषाणुओं के उपप्रकार लक्षित अंगों में दुर्दम रसौलियां उत्पन्न करते हैं। अलग-अलग ल्यूकीमिया विषाणु इरिथ्रो (लाल रक्त कोशा), मायलाइड (मज्जाभ) तथा लिम्फायड (लसीकाभ) ल्यूकीमिया उत्पन्न करते हैं। सार्कोमा विषाणु भी ल्यूकीमिया विषाणु की तरह वर्गीकृत किये गये हैं। राउस सार्कोमा विषाणु का सर्वाधिक अध्ययन किया गया है। यह विषाणु कुक्कुटों में कैन्सर उत्पन्न करता है। इस विषाणु का नाम आविष्कारक, पेटन राउस के नाम पर रखा गया है। सिद्धान्तया ल्यूकीमिया विषाणु लम्ब या क्षैतिज विधि द्वारा संचरित हो सकता है। लम्बविधि द्वारा संचरण का तात्पर्य है कि विषाणु पीढ़ी दर पीढ़ी निषेचित अण्ड तथा भ्रूण द्वारा ले जाया जाता है, अर्थात विषाणु "आंकोवायरो जीन" द्वारा संचरित

किया जाता है। विकरण के प्रभाव से मूषकों तथा कुक्कुट के भ्रूणों में आंकोवायरो जीन सक्रिय भी किये गये हैं।

2- स्तन कैन्सर विषाणु : विशिष्ट अंतः प्रजनित चूहों में स्तन कैन्सर विषाणु ''स्तन कार्सिनोमा'' उत्पन्न करते हैं। इसे ''बिटनर कारक'' भी कहा जाता है। आनुवंशिक पूर्व-संवेदनशीलता, हार्मोनों के असंतुलन तथा स्तन कैन्सर विषाणु मिलजुल कर कैन्सर उत्पन्न करते हैं। स्त्रियों में भी स्तन कैन्सर का आघटन बहुत होता है जिसके ऐसे ही कारण हो सकते हैं।

(ब) आंकोडना विषाणु : ये डी.एन.ए. विषाणु हैं तथा वृहद-असम समूह बनाते हैं (चित्र-2 अ)। प्रमुख कैन्सर जनक डी.एन.ए. विषाणु निम्न हैं

1- पैपीलोमा विषाणु : ये मनुष्य, गायों, कुत्तों, खरगोशों तथा चूहों में त्वचा के मस्से उत्पन्न करते हैं। कुछ विषाणु दुर्दम रसौलियां भी पैदा करते हैं। इनके अनेक प्रकार तथा उप-प्रकार होते हैं।

2- सिमीयन विषाणु 40 (एस.वी.40) : यह विषाणु बंदरों में पाया जाता है। मानव में इस विषाणु द्वारा कैन्सर उत्पन्न करने के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

3- एडीनो विषाणु : मनुष्यों के एडीनो विषाणु नवजात हैमस्टरों में दुर्दम रसौलियां पैदा करते हैं। ऐसी कोई सूचना नहीं उपलब्ध है कि एडीनो विषाणु नैसर्गिक परपोषी (मानव) में कैन्सर उत्पन्न कर सकता है।

4- हर्पीज विषाणु : अफ्रीकी बरकिट लिम्फोमा नामक अवस्था में ''इपीस्टीन बार विषाणु'' पाये गये हैं। आश्चर्य का विषय है कि अप्रचलित लिम्फोसर्कोमा मात्र पूर्वी-अफ्रीका तथा न्यूगिनी के बच्चों में ही पाया जाता है। एक अन्य हर्पीज विषाणु कुक्कुटों में ''मरेक्स रोग'' नामक कैन्सर अवस्था उत्पन्न करता है। मरेक्स रोग के विदेशों तथा भारत में विस्तृत अध्ययन किये गये हैं तथा इसका टीका भी सुलभ है।

कैन्सरजनक रेट्रो-विषाणु तथा रसौली रचना

समस्त आंकोजेनिक आर. एन. ए. विषाणु ''रेट्रोवाइरिडी'' परिवार के सदस्य हैं जिसका नाम प्रतिकारक रिवर्स ट्रांस्क्रिप्टेस पर रखा गया है। रेट्रोविषाणुओं को अन्तर्जात तथा बर्हिजात, दो समूहों में रखा गया है। अन्तर्जात रेट्रो-विषाणु परपोषी कोशिका, जीनोम में समन्वित हो जाते हैं और ये मेण्डल के नियम के अनुसार लम्ब-विधि (या माता-पिता से बच्चों में) द्वारा संचरित होते है। ये पूर्णतया कोशिका-नियंत्रण में रहते हैं, अतएव ये विषाणु लुप्त रहते हैं और कदाचित ही नैदानिक रोग उत्पन्न करते हैं। ये पूर्ण विषाणु होते हैं और इनमें रेट्रोविषाणुओं के तीनों वंशाणु पाये जाते हैं। बर्हिजात रेट्रोविषाणु क्षैतिज विधि द्वारा संचरित होते हैं। ये सच्चे संक्रमण-कारक होते हैं और रसौली रचना करते हैं।

विषाणु द्वारा रसौली-रचना की प्रक्रिया

डी.एन.ए. विषाणु उत्पादक या अनुत्पादक संक्रमण उत्पन्न करते हैं। प्रथम अवस्था में कोशिकाओं का भंजन होता है, जबकि दूसरी दशा में कोशिकाओं की मृत्यु नहीं होती है बल्कि उनका रूपान्तर हो जाता है। परपोषी कोशिका-वंशाणु में डी.एन.ए. विषाणु विशिष्ट जीनक्रम अथवा जीन उत्पादों में परिवर्तन उत्पन्न करके कोशिका रूपान्तरण करता है। आंकोजेनिक विषाणु की तरह रेट्रोविषाणु के भी डी.एन.ए.-आंकोजेनिक विषाणु में आंकोजीन्स पायी जाती हैं, हालांकि इन की आंकोजीन्स बहुत समधर्मी होती हैं जो कि अपने प्रोटोआंकोजीन्स के अनुसार होती हैं, तो भी इनके जीन उत्पाद की उसी प्रकार प्रतिक्रिया होती है।

बर्हिजात रेट्रोविषाणुओं को पुनः दो उप-समूहों में बांटा गया है। अत्यधिक आंकोजेनिक या तीव्र रूपान्तरण वाले रेट्रोविषाणु अत्यन्त सूक्ष्म लुप्त काल के पश्चात्, कुछ दिनों से कुछ माह में, कैन्सर उत्पन्न करते है। चिरकारी रूपान्तरण या दुर्बल आंकोजेनिक रेट्रोविषाणु लंबे ऊष्मायन काल के पश्चात, अर्थात कई वर्षों बाद रसौली रचना करते हैं। समस्त तीव्र रूपान्तरण उत्पन्न करने वाले रेट्रोविषाणु में राउस सार्कोमा की विशिष्ट src-आंकोजीन, पक्षियों के सार्कोमा की yes-आंकोजीन, पक्षियों के इरोथ्रोब्लासटोसिस की erb-B - आंकोजीन तथा माइलोसाइटोमेटीसिस विषाणु में myc - आंकोजीन पायी जाती हैं। लगभग बीस रेट्रोविषाणुओं में आंकोजीन्स पहचानी गयी हैं जो कि अपनी प्रोटोआंकोजीन्स की निकट से सम्बन्धी हैं।

दुर्बल आंकोजेनिक रेट्रोविषाणु लिम्फोमा तथा ल्यूकीमिया नामक कैन्सर उत्पन्न करते हैं। इनमें बिल्लियों, गो पशुओं तथा मूषकों के ल्यूकीमिया (रक्त कैन्सर) विषाणु सम्मिलित है (चित्र-1 ब)। ये दोष-रहित विषाणु होते हैं जिनमें ''आंकोजीन्स'' नहीं होते हैं। अपितु इसके ''पूर्व-विषाणु'' अनेक टकरावों के आकस्मिक अवसरों द्वारा कोशिकाओं में प्रवेश करते हैं जो कि आंकोजीन्स के निकटवर्ती होते हैं तथा परिवर्तन और सक्रियता उत्पन्न करते हैं। इसके बिल्कुल विपरीत, तीव्र रूपान्तरकारी रेट्रोविषाणु परपोषी की कोशिकाओं के जीनोम में प्रत्यक्ष रूप से रेट्रोविषाणु की आंकोजीन्स पारगमन करते हैं तथा अंतः-पात्र और बाह्य-पात्र, दोनों ही में रसौली रचना रूपान्तरकरण में प्रबल निर्धारक होते हैं।

II- कैन्सर जनक रसायन

कुछ अकार्बनिक तथा कार्बनिक, दोनों प्रकार के रसायन कैन्सरजनक पाये गये हैं। अकार्बनिक रसायनों में संखिया (आर्सेनिक) बहुत अधिक त्वचारागी है तथा इससे ''स्क्वेमस

सेल कार्सिनोमा'' तथा ''बेसल सेल कार्सिनोमा'' नामक दुर्दम रसौलियां उत्पन्न होती हैं। चिरकारी संखिया विषाक्तता द्वारा ''श्वसनी कार्सिनोमा'' तथा ''यकृत कोशिका कार्सिनोमा'' उत्पन्न होता पाया गया है। निकेल, सीसा तथा क्रोमियम, श्वसनी श्लेष्मकला कैन्सर उत्पादन में संदिग्ध पाये गये हैं। निकेल को नासिका-विवर के कैन्सर से सम्बंधित पाया गया है। ऐस्बैस्टस (मैग्निशियम-आयरन-सिलीकेट) द्वारा उत्पन्न फुफ्फुस धूलिमयता के 15% रोगियों में श्वसनी कार्सिनोमा पाया गया। फुफ्फुस आवरण मीशोथीलियोमा भी ऐस्बैस्टस द्वारा अधिक प्रभावित लोगों में उत्पन्न होता है। कार्बनिक रसायनिक यौगिकों में साइक्लिक हाइड्रोकार्बन्स कैन्सर जनन में महत्वपूर्ण माने गये हैं। इनमें से कई तम्बाकू के धुएं में उपस्थित होते हैं। हाइड्रोकार्बन्स में बेन्जपायरिन, डाई-बेन्जपायरीन और डाई-बेन्जएंथ्रासीन बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये पद्धार्थ कोलतार तथा ज्वलनशील पदार्थों द्वारा पृथक किये गये हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण कैन्सरजनक रसायनों के समूह, एल्काइलेटिंग पदार्थ, जैसे कि नाइट्रोजन मस्टर्ड, और डाई-मिथाइल-नाइट्रोस एमीन हैं। अन्य महत्वपूर्ण रसायनों में एनीलीन रंग, एजोनामक यौगिक तथा यूरीथेन तथा एफ्ला विष हैं। एफ्ला विष बी मूंगफली, मक्का तथा कई अनाजों व इन के खलों में ऐस्पिर्जिलस फ्यूमीगेट्स तथा ऐस्पिर्जिलस पारसिटीकस नामक फफूंदों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। एफ्ला विष बी मनुष्यों और पशुओं में यकृत कोशिका कार्सिनोमा (यकृत कैन्सर) उत्पन्न करता है। यह विष प्रायः बत्तखों में यकृत कैन्सर उत्पन्न करता पाया गया है।

कैन्सर जनक रसायन द्वारा रसौली रचना की प्रक्रिया

कुछ रसायन स्थानीय क्षेत्र पर प्रत्यक्ष क्रिया करते हैं; अन्य अप्रत्यक्ष क्रिया करते हैं या इनके उपापचय सक्रिय होकर मानव या पशु-देह में कार्य करते हैं। बाद वाले पदार्थ पूर्व-कैन्सरजनक पदार्थ कहलाते हैं। कभी-कभी दोनों कैन्सरजनक पदार्थ मिलकर कैन्सर उत्पन्न करते है, अतः इन्हें ''सह-कैन्सरजनक'' कहते हैं। पॉलीसाइक्लिक हाइड्रोकार्बन्स तथा एफ्ला विष बी , क्रमशः पर्यावरण प्रदूषक व भोजन प्रदूषक पदार्थ, आज के आधुनिक विश्व के प्रमुख कैन्सरजनक पदार्थ हैं। ये दोनों यकृत कोशाओं में अपने अधिआक्साईड में बदल जाते हैं। ये पदार्थ डी.एन.ए. के आधार, विशेषतया गुआनिन से संयुक्त होकर कर्करोग रचना रूपान्तरण प्राप्त करते हैं।

जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया गया है, कैन्सरजनक रसायनों पर ''प्रारंभिक'' तथा ''प्रवर्तक'' सिद्धान्त अधिक सच्चे और सटीक बैठते हैं। नैदानिक रसौली हेतु तुरन्त या विलम्ब से ''प्रारंभिक कारक'' के पश्चात् ''प्रवर्तक कारक'' आवश्यक होते हैं। प्रारंभिक कारक त्वरित गति से क्रिया करते हैं। इससे अनिवार्य रूप से अपरिवर्तनीय परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। ये प्रारंभिक कारक को एक मात्र उघाड़ने से व्युत्पन्न होते हैं। प्रवर्तन प्रक्रिया में पुनः दो उप-अवस्थाएं होती हैं: लक्षित कोशा/कोशिकाओं में आण्वीय क्षतियां व्युत्पन्न होना, और कोशा प्रफलन के एक चक्र द्वारा उक्त क्षतियों का स्थिरीकरण होना।

वास्तव में प्रथम अवस्था में कैन्सरजनक पदार्थ डी.एन.ए., आर.एन.ए. या प्रोटीन से बंधन करते हैं। प्रायः ये बंधन डी.एन.ए. से होते हैं जिसके द्वारा आण्वीय संरचना में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। इन परिवर्तनों को स्थिर करने के लिए कोशिकाओं में एक चक्र प्रफलन अनिवार्य होता है। ''प्रवर्तन'' एक समय-सीमा वाली प्रक्रिया है जो कि ''प्रवर्तक'' के बार-बार लगाने पर पूर्ण होती है। प्रारंभिक1तथा प्रवर्तक कारकों द्वारा प्रयोगात्मक कैन्सरजनन के कई उदाहरण हैं। बेन्जपायरिन (प्रारंभिक) तथा क्रोटॅन तेल (प्रवर्तक) द्वारा मूषकों में त्वचा-कैन्सर पैदा किये गये हैं। इसी प्रकार, मिथाईल नाइट्रोसएमीन (प्रारंभिक) और सैकरीन (प्रवर्तक) द्वारा चूहों के मूत्राशय की रसौलियां उत्पन्न की गयी हैं। एफ्ला विष बी (प्रारंभिक) तथा मिथाइल इस्टकुलेट (प्रवर्तक) द्वारा ट्राउट नामक मछली में यकृत-कैन्सर उत्पन्न किये गये हैं। ऐसे अनेक अन्य उदाहरण उपलब्ध हैं।

III- हार्मोन्स

हार्मोनों के असंतुलन द्वारा दुर्दम रसौलियों की व्युत्पत्ति की संभावना से हम बहुत समय से सुपरिचित हैं। इस तरह के कैन्सर उत्पत्ति के दो मूल सिद्धान्त हैं; कतिपय हार्मोन्स के लक्षित अंगों का अत्यधिक उद्दीपित होना और किसी अंतःस्रावीय अंग को बलपूर्वक लम्बे समय तक अत्यधिक मात्रा में हार्मोनों के उत्पादन करने को विवश करना।

प्रथम सिद्धान्त द्वारा चुहियों में स्तन कैन्सर उत्पन्न किये गये हैं। बहु-गर्भधारण के इतिहास युक्त मूषकों के अंतः प्रजनित प्रकारों में स्वतः उत्पन्न होने वाले स्तन कैन्सर का आघटन अधिक होता है। यहां तक कि नर तथा कुंआरी चुहियों को विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक और कृत्रिम ''ईस्ट्रोजेन'' नामक हार्मोन्स देकर उपर्युक्त प्रकार से स्तन कैन्सर का आघटन बढ़ाया जा सका था। यह भी सिद्ध किया गया कि हार्मोन्स शुद्ध कैन्सरजनक पदार्थ नहीं होते हैं तथा पूर्ण प्रभाव प्राप्त करने के लिए कैन्सर विषाणु की उपस्थिति नितांत आवश्यक है।

दूसरे सिद्धान्त का विशिष्ट उदाहरण चूहों में अग्र-पीयूषिका ग्रंथि की रसौलियां हैं। विकिरण या थायोयूरासिल नामक रसायन द्वारा गलगंड ग्रंथियों को नष्ट करके पीयूषिका ग्रंथि में रसौलियां उत्पन्न की गयीं। गलगंड ग्रंथियों की अनुपस्थिति में थायरोट्रॉपिन हार्मोन का उत्पादन बढ़ गया तथा अग्र-पीयूषिका ग्रंथि की क्षाररागी-कोशिकाओं का अतिविकसन हो गया। ये

कोशिकाएं ही थायरोट्रॉपिन हार्मोन उत्पादन करने की उत्तरदायी थीं। कालांतर में यह अतिविकसन, उपकला कोशिकीय रसौलियों में रूपान्तरित हो गया। इस प्रकार, गलगंड-ग्रंथियों के विच्छेदन के पश्चात् प्रारंभ में ''बहु क्षाररागी-
एडीनोमा'' आघटित होता है। थायराइड हार्मोन अवसादित चूहों में ये रसौलियां प्रतिरोपित भी की जा सकीं, जिस से सिद्ध हुआ कि ये रसौलियां हार्मोन्स पर निर्भर थीं।

ईस्ट्रोजेन की अधिक मात्रा से वृक्कों के कैन्सर उत्पन्न होने की संभावना अधिक बढ़ जाती है। ठीक इसी प्रकार की परिस्थितियों में ''आस्टीयोसार्कोमा'' और दुर्दम लिम्फोमा उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि चूहों में ईस्ट्रोजेन तथा रेडियोस्ट्रानशियम देने से प्रति चूहे 4.2 रसौलियां उत्पन्न हुई, जबकि स्थायी स्ट्रानशियम देने से यह संख्या 2.2 ही थी। प्रथम समूह के चूहों में रसौली उत्पादन-काल भी द्वितीय समूह के चूहों की तुलना में बहुत कम था। स्त्रियों में स्तन कैन्सर, गर्भाशय ग्रीवा कैन्सर तथा पुरूषों में प्रोस्ट्रेट ग्रंथि की दुर्दम रसौलियां भी हार्मोन के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं।

IV- आयनीकारक विकिरण

तरंगों और कणीय, दोनों प्रकार के विकिरण रसौली-रचना करते हैं। इनसे मानव और पशुओं, दोनों ही में कैन्सर पैदा होते हैं। सफेद बिल्लियां जब तेज धूप (अर्थात परा-बैंगनी किरणों) में लम्बे समय तक रहती हैं, तो उनको ''स्क्वेमस सेल कार्सिनोमा'' नामक कैन्सर उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार, परा बैंगनी, एक्स तथा गामा किरणों में लम्बे समय तक रहने पर कैन्सर उत्पन्न होते हैं। विस्मय है कि विकिरणी ऊर्जा की हल्की मात्रा का उपयोग मानव व पशुओं के कैन्सर उपचार में किया जाता है। अन्य कारकों की भांति विकिरण द्वारा भी लक्षित डी.एन.ए. का विखण्डन, भंजन व स्थानान्तरण अथवा उत्परिवर्तन या वंशानुगत रूपान्तरण उत्पन्न होता है और रसौली रचना होती है।

नागासाकी और हिरोशिमा, जापान से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा ज्ञात हुआ कि परमाणु बम के शिकार इन शहरों के निवासियों में विविध प्रकार के कैन्सरों का आघटन बहुत बढ़ गया। विकिरण के प्रभाव से ग्रस्त जापानियों को तीव्र तथा चिरकारी मायलाइड ल्यूकीमिया तथा गलगंड ग्रंथियों के कैन्सर उत्पन्न हुए। चेकोस्लोवाकिया के जोकिनस्थाल और स्केनबर्ग ने वायु में ''रैडॉन'' के विकिरण के प्रदूषण द्वारा श्वसनी कार्सिनोमा उत्पन्न होना सुविदित बताया। इससे पूर्व वर्ष 1920 के दशक के मध्य में घड़ी के डायल को रंगने वाले व्यक्तियों को रेडियम के प्रदूषण के कुप्रभाव द्वारा ''ऑस्टियोसार्कोमा'' नामक अस्थि कैन्सर उत्पन्न हुए। रोयेंग्टन विभेदक माध्यम ''थारोट्रास्ट'' से भी कई प्रकार के घातक कैन्सर उत्पन्न हुए। यह कैन्सरजनक रसायन शरीर द्वारा धीरे-धीरे स्रावित होता है
तथा इसके प्रयुक्त होने के 20-30 वर्षों के लम्बे अंतराल बाद कैन्सर उत्पन्न हुए। रोयेंग्टन चिकित्सा के कुछ प्रारंभिक कार्यकर्ताओं ने अपनी त्वचा को मात्रामापी की तरह प्रयोग करके रेडियम की शक्ति का आकलन करने के दुःसाहस किये थे। इनमें से अनेक लोगों को कई दशक पश्चात् विकिरण ग्रस्त अंगों में त्वचा कैन्सर, फाइब्रोसार्कोमा या दुर्दम मिलेनोमा उत्पन्न हुए। बद्धकशेरुका संधिशोथ ग्रस्त रोगी जिनकी विकिरण द्वारा चिकित्सा की गयी थी, ल्यूकीमिया के अधिक शिकार हुए। उनमें थायमस का अतिविकसन भी हुआ। सम्पूर्ण शरीर पर अधिक मात्रा में कई बार विकिरण के अल्पकाल के लुप्तकाल के पश्चात् ल्यूकीमिया का आघटन बढ़ जाता है, जबकि मात्र 100 रैड जैसी कम मात्रा के विकिरण द्वारा लगभग 25 वर्षों पश्चात् ल्यूकीमिया के प्रभाव उत्पन्न होते हैं। उपर्युक्त उल्लिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट हुआ कि अधिक मात्रा में आयनीकारक विकिरण के प्रयोग द्वारा कैन्सर उत्पन्न होते हैं।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि कैन्सर के कारणों की प्रक्रिया को अभी तक अस्पष्टता से ही समझा जा सका है। अधिकांश कारक-प्रत्यक्ष रूप से प्रभावी ''आंकोजीन्स'' (जैसे विषाणु) अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ''प्रोटोआंकोजीन्स'' में सक्रियता या परिवर्तन उत्पन्न करके, संभवतः ''प्रतिरोधी आंकोजीन्स'' की अल्पता या अवसादन द्वारा कर्क रचना रूपान्तरण उत्पन्न करते हैं। कर्क रचना में कोशिका वृद्धि तथा उनके विभेदीकरण में विपथन हो जाता है जो कि विभिन्न वृद्धि कारकों, वृद्धि कारक ग्राहकों, कोशिका संकेतों और अंतः कोशिका संदेशकों की वंशाणु कोडिंग पर नियंत्रण रखते हैं। जटिल अपविन्यास द्वारा परिवर्तित कोशिकीय उघाड़ होता है जिस में कर्क रचना रूपान्तरण सम्मिलित होती है। उक्त जटिल प्रक्रिया में बहुत कुछ अन्य भी सम्पन्न होता है जहां तक हमारा ज्ञान अभी नहीं पहुंच सका है, अतएव कैन्सर क्यों होता है, इस विषय में निरंतर खोजों द्वारा ही यह गूढ़-गुत्थी सुलझ सकेगी।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

समुद्री प्रदूषण निवारण में तेल-भक्षी जीवाणु

डा. राजनारायण पांडेय
नाभिकीय कृषि प्रभाग
भा.प.अ. केंद्र, बम्बई- 400085

जमीन की गहराइयों से निकलने वाला कच्चा तेल कई रसायनों का मिश्रण होता है जिनमें से कुछ रसायन विषालु होते हैं। सागर तल पर कच्चे तेल के फैल जाने से समुद्री पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। इस प्रकार के प्रदूषण से निपटने के लिए चल रहे तेल-भक्षी जीवाणुओं पर जैव-तकनीकी अध्ययनों का विवरण प्रस्तुत है।

आँखों से न दिखने वाले सूक्ष्मजीव, विशेषकर जीवाणु या बैक्टीरिया न केवल उन सभी जगहों पर पाये जाते हैं, जहाँ बड़े जीवधारी निवास करते हैं, बल्कि उन स्थानों पर भी विद्यमान हैं, जहाँ अन्य जीवधारी दृष्टिगोचर नहीं होते और जहाँ का वातावरण अन्य जीवधारियों के लिए अत्यन्त विषम और अहितकर होता है। मिट्टी में, पानी में, हवा में, सर्वत्र विद्यमान हैं सूक्ष्मजीव जो मानव को हानि भी पहुँचाते हैं और लाभ भी। इनके विभिन्न उपयोगों से जीवाणु मानव के लिए हानिप्रद होने की तुलना में लाभकारी अधिक सिद्ध हो रहे हैं। इधर हाल के कुछ वर्षों से जीवाणुओं द्वारा समुद्र में तेल से होने वाले प्रदूषण के निवारण की संभावनाओं का पता लगाया जा रहा है।

तेल के फैलने से समुद्र में प्रदूषण

इस शताब्दी में पूरे विश्व में पेट्रोलियम की माँग बढ़ने के फलस्वरूप, उसके उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। कच्चे तेल या 'क्रूड ऑयल' के उत्पादन, शोधन तथा वितरण से पर्यावरण प्रदूषण की भी समस्या उठ खड़ी हुई है। विगत वर्षों में तेलवाही जहाजों से बड़े पैमाने पर समुद्र में तेल फैल जाने से प्रदूषण की अनेक घटनाएं हुई हैं। अनुमानतः तेल का 0.5% भाग तेल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के दौरान समुद्र के पानी में गिर जाता है। तेल-टैंकरों के दुर्घटनाग्रस्त होने, टैंकरों की सफाई के बाद तेलयुक्त पानी समुद्र में डालने तथा जानबूझ कर तेल को समुद्र में डालने से तेल समुद्र के पानी में फैलता है। समुद्र में तेल के फैलने से अनेक समुद्री जीवों की मृत्यु हो जाती है, और अन्य जीवों के लिए पानी विषाक्त हो जाता है। कच्चे तेल में उत्परिवर्तनकारक, कैंसरजनक तथा वृद्धिरोधक पदार्थ मौजूद होते हैं, जो समुद्री जीवों को हानि पहुँचाते हैं। कुछ पेट्रोलियम-प्रभाजितों की थोड़ी-सी मात्रा (5-100 माइक्रोग्राम) भी सूक्ष्म शैवालों तथा अल्पवयस्क जीवधारियों को नष्ट कर देती है। समुद्र-तट पर तेल-प्रदूषण से मत्स्यपालन, मनोरंजन तथा सामान्य जनस्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है।

समुद्र में तेल गिरकर फैलने की पहली घटना 18 मार्च 1967 को ग्रेट ब्रिटन के दक्षिण-पश्चिम समुद्र-तट पर, 'इंग्लिश चैनेल' के प्रवेश-द्वार के निकट हुई, जिसमें लाइबेरिया के तेलवाही जहाज 'टेरी कैन्योन' से 60,000 टन कच्चा तेल बाहर समुद्र में गिरा। यह तेल समुद्र के किनारे-किनारे करीब 160 किलोमीटर तक फैला, जिससे अनगिनत मछलियों तथा पक्षियों की मृत्यु हुई।

जनवरी 1969 में संयुक्त राज्य अमेरिका में सैंटा बारबारा के समुद्र-तट से थोड़ी दूर तेल के एक कुएं में विस्फोट हुआ, जिससे 1000 गैलन प्रति घंटे की दर से तेल बाहर निकलता रहा। इससे समुद्र-तट क्षतिग्रस्त हुआ।

वर्ष 1978 में एमैको काडिज दुर्घटना में 6.8 करोड़ गैलन तेल फ्रेंच कोस्ट में गिरा, जिससे समुद्रीजीवन कुप्रभावित हुआ।

24 मार्च 1989 को अलास्का के समुद्र-तट से थोड़ी दूर अमरीकी सुपर टैंकर, एस्कोन वाल्डेज एक समुद्री चट्टान से टकरा गया। इससे करीब 30,000 टन तेल सागर में गिरा, जो 1930 किलोमीटर तक फैला, और करीब 1 लाख समुद्री पक्षियों की मृत्यु का कारण बना।

भारत में 1973 में एक तेलवाही जहाज, कास्मसपायनियर के जमीन-तल पर जा लगने से गुजरात के समुद्री तट पर करीब 3000 टन तेल फैल गया। वर्ष 1974 में लक्षद्वीप में एक अमरीकी तेलवाही जहाज, ट्रांशुरोन के एक मूँगे की चट्टान से टकरा जाने से 5000 टन विशिष्ट फर्नेस ऑयल पानी में बिखर गया। तेलवाही जहाज, लाजपत से भी हजारों टन तेल बंबई के पास सागर में गिरा। वर्ष 1989 में

माल्टा के एक टैंकर से 5500 टन फर्नेस ऑयल बम्बई से थोड़ी दूर सागर में छलका।

वर्ष 1991 के खाड़ी युद्ध के दौरान कुवैत के समुद्र तट पर भारी मात्रा में तेल समुद्र में डाल दिया गया। अलास्का की तेल-दुर्घटना की तुलना में खाड़ी क्षेत्र में डाले गये तेल की मात्रा 30 गुना अधिक थी। इसके कारण हुए प्रदूषण को दूर करने में करीब 10 वर्ष लगेंगे।

तेल के रासायनिक घटक

कच्चा तेल प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला हाइड्रोजन और कार्बन तत्त्वों से निर्मित यौगिकों का एक जटिल मिश्रण है। इन हाइड्रोकार्बनों के अलावा, कच्चे तेल में थोड़ी मात्रा में आक्सीजन, गंधक तथा नाइट्रोजन भी विद्यमान होते हैं। निकेल और वनेडियम जैसे धात्विक घटक भी सूक्ष्म मात्रा में मौजूद होते हैं। हाइड्रोकार्बन यौगिकों में पैराफिन, साइक्लोपैराफिन तथा एरोमेटिक यौगिकों का विभिन्न अनुपातों में समावेश होता है। कच्चे तेल को अणुओं के आकार के आधार पर आसवन द्वारा तथा ध्रुवणन के आधार पर प्रभाजित किया जाता है। इसके विभिन्न प्रभाजितों से गैसोलिन, केरोसीन (मिट्टी का तेल), गैस-आयल, स्नेहक (ल्यूब्रीकेंट) तथा अवशिष्ट पृथक किये जाते हैं। हर एक आसवन प्रभाजी समान अणु-भार वाले यौगिकों का मिश्रण होता है, जिसमें लगभग सभी वर्ग के हाइड्रोकार्बनों का प्रतिनिधित्व होता है।

तेलभक्षी जीवाणु

प्रकृति में कई प्रकार के जीवाणु ऐसे हैं, जो हाइड्रोकार्बन का उपयोग अपने भोजन के लिए कार्बन तथा ऊर्जा के स्रोत के रूप में करते हैं। ऐसे ही जीवाणुओं को तेलभक्षी जीवाणु कहते हैं। तेलभक्षी जीवाणु मिट्टी और पानी, दोनों जगहों पर पाये जाते हैं, तेल की प्रचुरता वाले स्थानों पर ये जीवाणु भारी संख्या में विद्यमान होते हैं। कई स्थानों पर तेल प्राकृतिक रूप से रिसकर जमीन और पानी की सतह पर आता रहता है। दुनिया भर में करीब 200 अंतः समुद्री स्थल पहचाने गये हैं, जहाँ पर प्राकृतिक रूप से तेल का रिसाव होता है। तेलभक्षी जीवाणुओं का विकास संभवतः तेल के प्राकृतिक रिसाव के फलस्वरूप ही हुआ।

तेलभक्षी जीवाणु तेल का 'भक्षण' या विघटन किस प्रकार करते हैं, इसे समझने के लिए वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में विभिन्न जीवाणुओं तथा विभिन्न वर्गों के हाइड्रोकार्बनों का प्रयोग करके कई परीक्षण किये। परीक्षणों से निम्नलिखित पहलुओं पर जानकारी हासिल की गयी:

1) जीवाणुओं तथा हाइड्रोकार्बनों के बीच भौतिक अंतर्क्रिया जब कच्चा तेल जलीय वातावरण में रखा जाता है, तो इसका अल्पांश जलीय प्रावस्था में घुल जाता है; कम अणुभार वाले भाग गैस-प्रावस्था में अंतरित हो जाते हैं, तथा मुख्य भाग एक अतिरिक्त परिक्षिप्त द्रव-प्रावस्था का निर्माण करता है। जैसे-जैसे कच्चे तेल का वाष्पीकरण तथा सर्वाधिक ग्राह्य भाग का जीवाण्विक विघटन आगे बढ़ता है, तेल ठोस रूप में परिणित होने लगता है।

प्रयोगशाला में जब एक भाग कच्चा तेल 10 भाग पानी के साथ हिलाया जाता है, तो तेल का करीब 0.02% अंश जलीय प्रावस्था से पुनर्प्राप्त किया जा सकता है। इसी अंश में पेट्रोलियम के सर्वाधिक विषाक्त अवयव विद्यमान होते हैं। पेट्रोलियम के जल-निष्कर्षण से प्राप्त पदार्थों में फेनाल, एनीलीन, बेंजीन तथा नैफ्थलीन के एल्काइल युक्त व्युत्पन्न शामिल हैं। परीक्षणों में नैफ्थलीन, फेनान्थ्रीन तथा एन्थ्रासीन पर जब जीवणुओं को उगाया गया तो ज्ञात हुआ कि जीवणुओं की वृद्धिदर इन ठोस हाइड्रोकार्बनों की घुलनशीलता से सीधे संबंधित है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि जीवाणु ठोस 'एरोमेटिक' हाइड्रोकार्बनों का उपयोग घुली अवस्था में ही करते हैं। जल में अविलेय द्रव हाइड्रोकार्बनों के उपयोग के बारे में दो अवधारणाएं मानी गयी हैं; (i) जीवाणु-कोशिका तथा तेल की बड़ी बूँदों के सीधे संपर्क से अंतर्ग्रहण तथा (ii) तेल की सूक्ष्म बूँदों (1 माइक्रान से कम व्यास वाली) के छद्मविलेयीकरण द्वारा स्थूल-प्रावस्था का अंतर्ग्रहण। परीक्षणों से सीधे संपर्क की अवधारणा पुष्ट हुई है।

2) पायस (एमल्शन) का निर्माण - कई प्रकार के जीवाणु जब हाइड्रोकार्बनों पर उगाये जाते हैं, तो वे तेल और पानी के साथ एमल्शन का निर्माण करते हैं। कुछ जीवाणु माध्यम यूष (ब्रौथ) में एमल्शन-कारक घटक विसर्जित करते हैं। पर, कुछ विशेष जीवाणु बिना कोशिका वृद्धि के भी एमल्शन का निर्माण करते हैं। ऐसा संभवतः कोशिका के तल पर कुछ विशिष्ट पदार्थों के उत्पादन के कारण होता है।

3) जीवाणु-कोशिका में हाइड्रोकार्बनों का अंतर्ग्रहण - 'एसीनोबैक्टर' जाति के जीवाणुओं पर अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि जीवाणु-कोशिकाओं में हाइड्रोकार्बन बिना रूपान्तरित हुए जमा हो जाते हैं। हेक्साडेकेन, हेप्टाडेकेन तथा अन्य हाइड्रोकार्बनों पर जीवाणुओं को उगाने से ज्ञात हुआ कि ये पदार्थ कोशिका में एक विशेष सीमाकारक झिल्ली के अंदर जमा हुए। यह विशिष्ट झिल्ली वृद्धि के दौरान संश्लेषित कोशिका-द्रव्यीय

झिल्ली प्रणाली से जुड़ी थी। हाइड्रोकार्बनों का अंतर्ग्रहण संभवतः कोशिका के बाहर छद्मविलेयीकृत तेल की सान्द्रता, भीतर की अपेक्षा अधिक होने के कारण थी। कोशिकाभित्ति तथा झिल्ली की लिपिडरागी विशेषताओं के कारण प्रसरण में और अधिक सुविधा होती है। अंतर्ग्रहण के लिए किसी वाहक अणु की मौजूदगी सुनिश्चित नहीं हो पायी है।

कम विलेयता वाले (10^{-7} मोलर से कम) ठोस हाइड्रोकार्बनों का जीवाणुओं द्वारा विघटन का विवरण अधिक नहीं मिलता।

4) जीवाणुओं के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व - जीवणुओं द्वारा पेट्रोलियम के अपघटन के लिए उपयुक्त कोशिका तथा अधोस्तर (सबस्ट्रेट) के बीच अंतर्क्रिया एवं जीवाणु की विशिष्ट चयापचायी और अनुवांशिक क्षमता के अतिरिक्त, कुछ विशेष पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। हाइड्रोकार्बन-अधोंस्तर केवल कार्बन और ऊर्जा प्रदान करते हैं, पर उनमें नाइट्रोजन, फ़ास्फोरस, तथा आक्सीजन तत्त्वों का अभाव होता है। ये तत्त्व जीवाणु-कोशिका की वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। चूँकि अधिकांश प्राकृतिक जलीय वातावरण में उपयोग के योग्य नाइट्रोजन और फास्फोरस का अभाव होता है, अतः जीवाणुओं द्वारा पेट्रोलियम के तीव्र विघटन के लिए इन तत्त्वों को बाहर से देने की आवश्यकता होती है। प्रयोगशाला में नाइट्रोजन की आपूर्ति माध्यम में यूरिया, अमोनिया या नाइट्रेट लवणों को डालकर की जाती है, तथा फास्फोरस की आपूर्ति अकार्बनिक फास्फेटों को मिलाकर की जाती है। आक्सीजन की पूर्ति के लिए प्रयोग खुले स्थान में संपन्न किया जाता है, जहाँ तेल और पानी का अंतः तल सीधे हवा के संपर्क में रहे। इन तत्त्वों के अलावा, फेरिक अमोनियम साइट्रेट जैसे जल में घुलनशील लौह-पदार्थों को मिला देने से तेल के जैव-अपघटन में तीव्रता आ जाती है। इन परीक्षणों के आधार पर प्राकृतिक वातावरण में तेलरागी पोषक तत्त्वों की आपूर्ति करके वहाँ पर विद्यमान जीवाणुओं द्वारा तेल के जैव विघटन को बढ़ावा देने की संभावना का संकेत मिला है।

5) प्रदूषित क्षेत्रों में जीवाणुओं का बीजारोपण - बहुत से वैज्ञानिकों ने प्रदूषित क्षेत्रों में तेलभक्षी जीवाणुओं के शुद्ध या मिश्रित संवर्धों को कृत्रिम रूप से बीजारोपित करने के लाभों पर अपने मत व्यक्त किये हैं। नाइट्रोजन की आपूर्ति के लिए कुछ विशिष्ट जीवाणुओं में आण्विक नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की क्षमता को अनुवांशिक रूप से निर्मित करने की संभावना की ओर भी संकेत किया गया है। क्लेब्सिएल्ला, एजोटोबैक्टर तथा राइजोबियम नामक जीवाणुओं में नाइट्रोजन-स्थिरीकरण की क्षमता होती है। इन जीवाणुओं के नाइट्रोजन-स्थिरीकारक वंशाणुओं (निफजीन) के बारे में पर्याप्त जानकारी हासिल की जा चुकी है, तथा इन्हें अन्य जीवाणुओं में अंतरित करना भी संभव हो सका है। 'क्लेब्सिएल्ला न्यूमोनी' नामक जीवाणु से निफ जीनों को 'ई. कोलाई' में अंतरित करके नाइट्रोजन स्थिरीकारक ई. कोलाई का निर्माण किया जा चुका है। 'स्यूडोमोनास प्यूटिडा' नामक जीवाणु पेट्रोलियम का विघटन करता है। इस जीवाणु में भी नाइट्रोजन-स्थिरीकरण की क्षमता प्रविष्ट कराने की संभावना का संकेत किया गया है। तथापि, अभी तक अनुवांशिकीय रूप से निर्मित किसी भी जीवाणु का प्रयोग व्यावहारिक स्तर पर नाइट्रोजन-स्थिरीकरण के लिए नहीं हुआ है।

6) चयापचयी विशिष्टता - जीवाणुओं द्वारा हाइड्रोकार्बनों के विघटन की प्रक्रिया पर किये गये अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि विघटन-क्रिया आण्विक आक्सीजन के मिलने से शुरू होती है। एरोमेटिक हाइड्रोकार्बनों के विघटन के लिए उनके वलय-विच्छेदन हेतु आक्सीजन के दोनों परमाणुओं के प्रवेश की आवश्यकता होती है। 'स्यूडोमोनासप्यूटिडा' के एक प्रभेद का प्रयोग करके एरोमेटिक हाइड्रोकार्बनों के आक्सीकरण का अध्ययन किया गया है। यह जीवाणु बेंजीन, टाल्विन तथा इथाइलबेंजीन जैसे हाइड्रोकार्बनों का उपयोग कार्बन के एकमात्र स्रोत के रूप में कर सकता है। द्वि-मिथाइलयुक्त एरोमेटिक हाइड्रोकार्बनों का उपयोग करते समय यह जीवाणु एरोमेटिक रिंग (वलय) को तोड़ने के पहले एक मिथाइल वर्ग का आक्सीकरण करके कार्बाक्सिल अम्ल में बदलता है। वलय-विच्छेदन के पूर्व एल्काइल स्थानापन्नों के आक्सीकरण में जीवाणु की प्रभेद विशिष्टता का बड़ा महत्त्व है। 'स्यूडोमोनास' के पाँच भिन्न प्रभेद एरोमेटिक हाइड्रोकार्बनों के विविध स्थानापन्न वर्गों पर वृद्धि करने में सक्षम हैं।

हाइड्रोकार्बनों का आक्सीकरण एक प्रेरणीय प्रक्रिया है। किसी भी अधोस्तर के कार्बन का एकमात्र स्रोत के रूप में प्रयोग तभी होता है, जब वह आक्सीकरण के लिए आवश्यक एंजाइमों को प्रेरित करने में सक्षम होता है। 'स्यूडोमोनास' की कई उपजातियों में अल्केन के आक्सीकरण की सक्रियता विभिन्न पदार्थों द्वारा प्रेरित की जा सकी है।

तेल-प्रदूषण-निवारण में जीवाणुओं का प्रयोग

इधर कुछ वर्षों से तेलभक्षी जीवाणुओं के प्रयोग से समुद्र में तेल-प्रदूषण समाप्त करने की दिशा में विचारं किया

जाता रहा है। इस कार्य में प्रारंभिक समस्या यह आती है कि प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले तेलभक्षी जीवाणु केवल कुछ ही प्रकार के हाइड्रोकार्बनों का उपयोग करने में सक्षम हैं। इसके अलावा, इनके द्वारा विघटन की दर भी बड़ी धीमी होती है। इन समस्याओं को हल करने के उद्देश्य से कुछ जैव-तकनीकी वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक जीवाणुओं को अनुवांशिकीय रूप से बदलकर उन्हें अधिक कार्यक्षम बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास के फलस्वरूप, डा. आनन्द चक्रबर्ती के, जो भारत में जन्मे और अमरीका में बसे एक वैज्ञानिक है; 'सुपर बग' का प्रादुर्भाव हुआ।

डा. आनन्द चक्रबर्ती का 'सुपर बग' - 'स्यूडोमोनास' वर्ग के कई प्रभेदों में विभिन्न प्रकार के हाइड्रोकार्बनों का विघटन करने की क्षमता होती है। हाइड्रोकार्बनों पर हमला करने वाले एंज़ाइमों को कोड करने वाले वंशाणु जीवाणु के मुख्य क्रोमोसोम पर न होकर प्लाज्मिडों पर अवस्थित होते हैं। 'प्लाज्मिड' डी.एन.ए. अणु की छोटी वृत्ताकार रचनाएं होती हैं, जिनमें स्वप्रतिकरण की क्षमता होती है, तथा जो क्रोमोसोम के साथ अपना अलग से अस्तित्व कायम रखती हैं। असामान्य पदार्थों के अपचय के लिए जिम्मेदार वंशाणु प्लाज्मिडों पर ही स्थित होते हैं। इस तथ्य की जानकारी सर्वप्रथम वर्ष 1952 में अमरीका में जोशुआ लेडरबर्ग द्वारा प्राप्त की गयी। वर्ष 1972 में डा. आनन्द चक्रबर्ती ने पहली बार स्यूडोमोनास प्यूटिडा द्वारा सैलीसिलेट के अपघटन से यह प्रमाणित किया कि अपघटन -पथ प्लाज्मिड- विशिष्ट होता है। तब से कैम्फर, नैफ्थलीन, ओक्टेन, टोल्विन, जाइलीन, 3-क्लोरोबेन्जोएट और बहुत से अन्य यौगिकों के अपघटन में प्लाज्मिड की भागीदारी की जानकारी मिली। डा. चक्रबर्ती ने अनुवांशिक इंजिनियरी की तकनीक द्वारा विभिन्न प्रभेदों के प्लाज्मिडों को एक जीवाणु-कोशा में प्रविष्ट कराया। पराबैंगनी के विकिरण से प्लाज्मिडों का संलयन हो जाता है। इससे 'स्यूडोमोनास' प्रभेदों में उन प्लाज्मिडों को एक-एक करके प्रविष्ट कराना संभव हुआ, जो विभिन्न हाइड्रोकार्बनों के अपघटन के लिए जिम्मेदार हैं। इस प्रकार, बहु-प्लाज्मिड युक्त 'स्यूडोमोनास' या 'सुपरबग' का जन्म हुआ।

डा. चक्रबर्ती का सुपरबग प्रयोगशाला में कच्चे तेल (क्रूड आयल) तथा कई प्रकार के हाइड्रोकार्बनों को 'खाकर' साफ करने में सक्षम है। यह पुनर्योजित जीवाणु इस विचार से निर्मित किया गया कि इसे प्रयोगशाला में भारी संख्या में उत्पन्न करके भूसे के साथ मिलाकर शुष्क अवस्था में रख दिया जायेगा, और आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग किया जायेगा। समुद्र में तेल-प्रदूषण समाप्त करने के लिए इसे तेल की परत पर छिटक दिया जायेगा। भूसा तेल को सोखेगा और जीवाणु तेल का विघटन करके हानिरहित पदार्थों में बदल देगा। यह संयोग की बात है कि डा. चक्रबर्ती द्वारा अनुवांशिकीय निर्मित 'सुपरबग' अमरीकी इतिहास में ऐसा पहला मानव निर्मित सूक्ष्मजीव है, जिसे 'पेटेंट' किया गया।

डा. चक्रबर्ती द्वारा निर्मित तेलभक्षी जीवाणु का प्रयोग अभी तक व्यापारिक रूप से नहीं हो सका है, और न ही प्रयोगशाला के बाहर इसका परीक्षण किया गया है। जब तक यह सुनिश्चित नहीं हो जायेगा कि जीवाणु की निर्मुक्ति से किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न नहीं होगा, इसे बाहर नहीं छोड़ा जायेगा। खाड़ी युद्ध के बाद, समुद्र में फैले तेल को जीवाणुओं द्वारा, विशेषकर डा. चक्रबर्ती के 'सुपरबग' द्वारा, समाप्त करने की संभावनाओं पर विचार किया गया था, पर सुरक्षा की अनिश्चितता के कारण जीवाणुओं का प्रयोग नहीं किया जा सका। यद्यपि डा. चक्रबर्ती ने आशंकित खतरों को मात्र सैद्धांतिक माना है, उनके अनुसार व्यावहारिक रूप से कोई खतरा नहीं होगा, तथापि अनिश्चितता के वातावरण में जीवाणुओं को बाहर नहीं छोड़ा जा सकेगा। डा. चक्रबर्ती ने सुझाव दिया कि समुद्र में फैले तेल के प्रदूषण को दूर करने के लिए रासायनिक पृष्ठ सक्रियक (सर्फेक्टेंट) का इस्तेमाल करने के बजाय, जीवाणुओं से प्राप्त 'सर्फेक्टेंट' का इस्तेमाल किया जाय। उन्होंने 'स्यूडोमोनास एरूजिनोसा' का एक ऐसा प्रभेद विकसित किया है, जो भारी मात्रा में 'सर्फेक्टेंट' का उत्पादन करता है। 'सर्फेक्टेंट' ऐसे तल-सक्रिय पदार्थ हैं, जो तेल और जल की सीमा-रेखा पर लसीलेपन तथा सतही तनाव को कम करते हैं। इससे तेल के तितर-बितर होने में मदद मिलती है।

वर्ष 1990 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने टेक्सास के पास समुद्रीजल में तेल की परत साफ करने के लिए प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले जीवाणुओं के प्रयोग की अनुमति दी। अलास्का में भी विस्तृत समुद्री क्षेत्र पर तेलरागी उर्वरकों का जिनमें नाइट्रोजन और फास्फोरस का समावेश था, छिड़काव करके प्राकृतिक जीवाणुओं की आबादी को प्रोत्साहित करके तेल-प्रदूषण दूर करने के प्रयास किये गये। वैज्ञानिकों को आशा है कि वह दिन दूर नहीं, जब जीवाणुओं का प्रयोग खनिज तेलों के निष्कर्षण, उत्पादन और दुर्घटनावश बाहर गिरे तेल की सफाई करने में नियमित रूप से होने लगेगा।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

तंत्रिका शल्य विज्ञान : ज्ञान-तंतुओं पर नियंत्रण

डा. वासुदेव प्रसाद यादव
98 अशोक नगर, आगरा - 282 002

कल तक मस्तिष्क के जिस ट्यूमर को एक असाध्य रोग एवं रोगी को कुछ ही दिनों का मेहमान समझा जाता था तथा जिस तंत्रिका सम्बन्धित रोगों के निदान के लिए शल्यक्रिया का सर्वथा अभाव था, आज उसी चिकित्सा विज्ञान की इस नयी विधा में हम विश्व के किसी भी देश से पीछे नहीं हैं। तंत्रिका विज्ञान के विकास ने शल्यक्रिया को अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है।

स्वतंत्रता से पूर्व हमारे देश में तंत्रिका शल्य चिकित्सा (न्यूरोसर्जरी) की सुविधाओं का सर्वथा अभाव था। भारत में इसका प्रारंभ न्यूरोसर्जन, डा. जैकब चेन्डी ने वर्ष 1951 में क्रिश्चियन मेडिकल कालेज, बेलोर में किया। वर्ष 1954 में मेडिकल कालेज अस्पताल में 36 बिस्तर का प्रथम तंत्रिका शल्य कक्ष आरंभ हुआ। मद्रास मेडिकल कालेज देश का दूसरा अस्पताल था जहाँ तंत्रिका शल्य की शुरूआत हुई। इसके बाद, कुछ वर्षों के भीतर ही देश के बहुत से महानगरों में तंत्रिका शल्य क्रिया की जाने लगी।

तंत्रिका शल्य क्रिया चिकित्सा विज्ञान की एक अद्‌भुत शाखा है और यह इसी का चमत्कार है कि आज सिर का ट्यूमर एवं चोट, स्ट्रोक, रीढ़ की हड्डी की चोट अथवा ट्यूमर, परिधीय तंत्रिकाओं की चोट जैसे गंभीर रोगों की चिकित्सा अब सहज हो गयी है।

यातायात दुर्घटनाओं में सिर की चोट मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। दुर्घटना-स्थल पर सिर की चोट के रोगी को बड़ी सरलता से प्राथमिक चिकित्सा दी जा सकती है। इन रोगियों की बाहरी चोट से बहता हुआ रक्त देखने में भयावह अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु यह मृत्यु का कारण नहीं होता है। अतः, बहते हुए रक्त को देखकर घबराना नहीं चाहिए। एक साफ रूमाल से घाव को दबाकर रक्त के बहाव को रोक देना चाहिए। पाया यह गया है कि रोगी के जीवन और मृत्यु में उसकी श्वास क्रिया निर्णायक सिद्ध होती है। वस्तुतः सांस लेने में पैदा हुआ अवरोध, इन रोगियों में मृत्यु का एक बड़ा कारण होता है। अचेतावस्था में हो सकता है कि रोगी के मुंह की गंदगी, बहता हुआ रक्त आदि रोगी के फेफड़ों में चले जायें अथवा उसकी जीभ पीछे की ओर चली जाये जिससे वह सांस लेने में असमर्थ हो जाये। इसलिए, रोगी को धीरे से एक ओर लिटा देना चाहिए, मुँह की गंदगी को किसी साफ कपड़े से बाहर निकाल देना चाहिए और इस ओर ध्यान देना चाहिए कि उसकी जीभ पीछे की ओर न जाए।

आज पूरे भारत में लगभग 50 ऐसे केन्द्र कार्यरत हैं, जहाँ पहुंचते ही रोगी को पर्याप्त चिकित्सा सुविधा मिल सकती है। आधुनिक निदान यंत्रों द्वारा, जिन में कैट स्कैनर का एक विशेष स्थान है, यह पता लगाया जा सकता है कि रोगी किस प्रकार की समस्या से ग्रस्त है। इसके बाद, औषधियों अथवा शल्य-क्रिया द्वारा जीवन बचाने के लिए आवश्यक कदम उठाये जा सकते हैं। प्रायः रोगी सिर की चोट लगते ही अचेत हो जाते हैं। ऐसा मस्तिष्क पर पहुंचे आघात के कारण होता है। ऐसे रोगी, जिनके मस्तिष्क को बहुत अधिक क्षति नहीं पहुंचती, कुछ ही समय बाद चैतन्य अवस्था में आ जाते हैं। कुछ रोगियों में उनके मस्तिष्क की बाहरी सतह पर सूक्ष्म रक्त वाहिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। इसमें भीतर ही भीतर रक्तस्राव होता रहता है, फलतः रोगी के मस्तिष्क पर दबाव बढ़ता रहता है और वह कुछ घंटे बाद पुनः अपनी चेतना खो देता है। यह एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण लक्षण है और जीवन के लिए खतरे का सूचक। ऐसे समय पर यह आवश्यक हो जाता है कि रोगी के उपचार के लिए तत्काल शल्यक्रिया की जाए। इस खतरे को भांपने में कैट स्कैनर अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है।

सिर की चोट के रोगियों में याददाश्त कुछ समय के लिए प्रभावित हो जाती है। रोगी को चोट के पूर्व और कुछ समय बाद तक की घटनाएं याद नहीं रहतीं, भले ही रोगी चेतनावस्था में ही हो। ऐसा मस्तिष्क में अचानक पड़े जोर के कारण होता है। सिर में चोट लगने के बाद यदि सिर में दर्द रहने लगे अथवा व्यक्तित्व में अचानक परिवर्तन नजर आये तो भी चिकित्सक की

सलाह लेना आवश्यक हो जाता है। ये भीतर पनप रही समस्याओं के लक्षण हो सकते हैं।

अध्ययनों द्वारा यह भी पाया गया है कि मस्तिष्क चोट के रोगी घायल होने के कुछ समय बाद मिर्गी के दौरों से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसे रोगियों के लिए यह अति आवश्यक है कि वे डाक्टरी सलाह लें। अधिकतर व्यक्ति दो से तीन वर्ष तक लगातार मिर्गी निरोधक दवा लेने के बाद पुनः स्वस्थ हो जाते हैं।

मस्तिष्क के ट्यूमर के निदान में इतिवृत्त के अतिरिक्त, खोपड़ी का एक्स-रे, ई.सी.जी., एन्जियोग्राफी, बेन्ट्रीक्योलोग्राफी और कैट स्कैनिंग आवश्यक हैं। ब्रेन ट्यूमर किसी भी आयु के व्यक्ति में हो सकता है। इसकी जड़ मस्तिष्क के किसी भी भाग अथवा मस्तिष्क को घेरनेवाली झिल्ली में हो सकती है। लगभग 50% मस्तिष्क ट्यूमर सुदम (बिनाइन) होते हैं और शेष 50% दुर्दम (मेलिगनेन्ट) होते हैं। सुदम का अभिप्राय यह है कि वह ट्यूमर धीरे-धीरे बढ़ता है और दुर्दम ट्यूमर की तरह शरीर के अन्य अंगों में नहीं फैलता है, अतः इन ट्यूमरों में समय रहते की गयी चिकित्सा से रोगी को सामान्य जीवन दिया जा सकता है।

मस्तिष्क शरीर का सबसे महत्वपूर्ण भाग है, जो हड्डियों के एक खोल में सिर में सुरक्षित रहता है, मस्तिष्क एक ऐसे सीमित स्थान में कैद है जहाँ उसके बढ़ने के लिए कोई जगह नहीं है, इसलिए जब मस्तिष्क का ट्यूमर बढ़ता है, तब उसके साथ-साथ खोपड़ी के भीतर दबाव भी बढ़ता है। इससे रोगी के सिर में दर्द उठने लगता है, मितली की शिकायत हो जाती है, दृष्टि प्रभावित हो सकती है और दौरे पड़ने भी शुरू हो जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति में चालीस वर्ष की आयु के बाद दौरे पड़ें, तो यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह किसी कुशल तंत्रिका विशेषज्ञ से तुरन्त परामर्श करे। ये लक्षण मस्तिष्क ट्यूमर के हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, रोगी के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन हो सकते हैं। प्रायः यह समझा जाता है कि इस का भला क्या उपचार होगा, अब तो रोगी कुछ ही दिनों का मेहमान है, परन्तु तंत्रिका शल्य की अद्‌भुत प्रगति के साथ अब ऐसा सोचना निराधार है। मस्तिष्क ट्यूमर के बहुत से रोगियों का शल्य चिकित्सा द्वारा जीवन पुनः सामान्य बनाया जा सकता है। इसके लिए सबसे जरूरी बात यह है कि रोग का निदान प्रारंभिक अवस्था में ही कर लिया जाये, क्योंकि एक लम्बे समय तक दबाव रहने से जो परिवर्तन (जैसे नेत्र तंत्र पर पड़े दबाव के कारण उत्पन्न हुई दृष्टिहीनता) उत्पन्न हो जाते हैं, वे स्थाई हो जाते हैं, अतः देर से की गयी तंत्रिका शल्यक्रिया से हो सकता है कि रोगी बच जाये, लेकिन उसकी दृष्टि न रहे।

मनुष्य के शरीर में चारों ओर फैली परिधीय तंत्रिकाएं (पेरिफेरल नर्व) अंगों की सभी क्रियाओं और संवेदन क्षमता के आधार हैं। ये तंत्रिकाएं, रीढ़ के रज्जु एवं मस्तिष्क से सन्देश ग्रहण कर शरीर के विभिन्न अंगों में हरकत उत्पन्न करती हैं तथा ताप, दबाव, स्पर्श संवेदनाओं को मस्तिष्क के अलग-अलग भागों तक पहुँचाती हैं। शरीर में सभी जगह फैले होने के कारण, दुर्घटनाओं में ये क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। ऐसा होने पर शरीर का वह भाग कमजोर हो जाता है और संवेदनशील नहीं रहता है।

शरीर की बाह्य तंत्रिकाओं में अनेक सूक्ष्म इकाइयां होती हैं जो एक मुख्य तंत्रिका कोशिका (न्यूरान) से जुड़ी होती हैं। इन इकाइयों को अक्षतंतु (एक्सान) कहते हैं। क्षतिग्रस्त होने पर अक्षतंतु कुछ समय बाद पुनः पनपने लगते हैं। कई बार होता यह है कि कटे हुए अक्षतंतु के दो छोर बीच में चिह्न ऊतक (स्कार टिशू) आ जाने के कारण मिल नहीं पाते। ऐसे रोगियों में उचित शल्यक्रिया द्वारा तंत्रिका को काफी हद तक सामान्य बनाया जा सकता है। परिधीय तंत्रिकाओं की तंत्रिका शल्यक्रिया काफी जटिल है। एक तंत्रिका में बहुत से अक्षतंतुओं का समावेश होता है। शल्य क्रिया करते समय यह ध्यान रखना पड़ता है कि प्रत्येक अक्षतंतु के दो छोर ही आपस में मिल रहे हों, क्योंकि यदि दो अलग-अलग अक्षतंतु आपस में मिल जायें, तो बहुत-सी जटिलताएं एवं समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे हमारे टेलिफोन के तार को किसी अन्य टेलिफोन के तार से यदि मिला दिया जाये, तो हमेशा टेलिफोन के गलत नम्बर ही मिलेंगे। परिधीय तंत्रिकाओं की इस शल्य-क्रिया में परिचालित सूक्ष्मदर्शी (आपरेटिंग माइक्रोस्कोप) महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

परिचालित सूक्ष्मदर्शी तो वस्तुतः प्रमस्तिष्क अवघात (सेरिब्रल स्ट्रोक) की तंत्रिका शल्य में वरदान सिद्ध हो रहा है। इसके द्वारा रुकी हुई रक्त-वाहिकाओं की शल्य-चिकित्सा सहज हो गयी है। विशेष उपमार्ग (बायपास) शल्य चिकित्सा द्वारा अब मस्तिष्क के उस भाग का रक्त-प्रवाह पुनः सामान्य बनाया जा सकता है। सूक्ष्म शल्यक्रिया (माइक्रोसर्जरी) और बाइपोलर कोटरी

के तकनीकी विकास से प्रमस्तिष्कीय रक्त स्राव (सेरिब्रल हेमरेज) के मामले में भी शल्य-क्रिया संभव है। आज स्थिति यह है कि साठ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों में मृत्यु का एक मुख्य कारण प्रमस्तिष्क अवघात है। इसमें रोगी के मस्तिष्क की नस फट जाती है अथवा उसमें रक्त के थक्कों के पहुंच जाने से अवरोध उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्क के उस भाग में पर्याप्त मात्रा में रक्त नहीं पहुंच पाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा एवं हृदय रोग प्रमस्तिष्क अवघात के मुख्य कारक हैं। इनके अतिरिक्त, रक्त में कोलेस्टरोल की अधिकता और मानसिक तनाव का भी इससे संबंध पाया गया है। रोग के ये लक्षण रोगियों में अचानक जन्म ले सकते हैं अथवा धीरे-धीरे उभर सकते हैं। प्रायः रोगी के सिर में भयंकर पीड़ा होने लगती है, उसे अधरंग हो सकता है और यह भी संभव है कि 'वाक् तन्त्र' पर प्रभाव पड़ने के कारण वह बोलने की क्षमता खो बैठे। कुछ रोगी अचेतावस्था में भी चले जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक, ये रोगी आजीवन अपंगता के शिकार हो जाते थे। हम जानते हैं कि शरीर की सभी क्रियाओं का नियंत्रण मस्तिष्क से होता है, जहाँ शरीर के अलग-अलग अंगों के, अलग-अलग विशेष क्रियाओं के केन्द्र होते हैं। इनमें से जो हिस्सा प्रमस्तिष्क अवघात की चपेट में आ जाता है, वह रक्त न मिलने के कारण नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में शरीर का वह अंग जिसका, यहाँ नियंत्रण केन्द्र होता है, शिथिल पड़ जाता है। पुनः उससे काम नहीं लिया जा सकता। अब ऐसे गंभीर रोगियों का जीवन तंत्रिका शल्य द्वारा सामान्य बनाया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शल्यक्रिया शीघ्र की जाये।

परिचालित सूक्ष्मदर्शी के विकास से तंत्रिका शल्य को एक नयी दिशा मिली है। यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मस्तिष्क की शल्यक्रिया कितने अधिक खतरों से भरा काम है। मस्तिष्क न केवल सर्वाधिक जटिल तथा चमत्कारी जैव कंप्यूटर है, बल्कि हमारी सभी अनुभूतियों और सृजनशील विचारों का अंकुरण-स्थल भी है। शल्यचिकित्सक का चाकू जरा-सा भटका कि पता नहीं शरीर का कौन-सा भाग, कौन-सी ज्ञानेन्द्रिय, कौन-सी संवेदना को आघात पहुंच जाये, अतः शल्य चिकित्सक इस संभावना के प्रति सदैव सचेत रहता है। इस सूक्ष्मदर्शी से शल्यचिकित्सक को यही सूक्ष्मता जिसकी उसे हमेशा से जरूरत रही है, मिल गयी है। इससे संपूर्ण 'शल्य क्षेत्र' कई गुना बड़ा दिखायी पड़ता है जिससे उसके हाथ की सफाई और अधिक अचूक हो जाती है।

चिकित्सा विज्ञान में अभी हाल के वर्षों में कई नयी तकनीकों का विकास हुआ है। इनमें डी.एस.ए. (डिजिटल सबट्रैक्शन एन्जियोग्राफी) और इवोक्ड पोटेन्शियल विशेष उल्लेखनीय हैं। तंत्रिका शल्य में डी.एस.ए. का विशेष महत्व है। इस तकनीक द्वारा अब मस्तिष्क की रक्त-धमनियों का साक्षात चित्र प्राप्त किया जा सकता है। रक्त-धमनियों में उत्पन्न हुए फैलाव अथवा रुकावट के बारे में रक्त-वाहिकाओं से छेड़-छाड़ किये बिना ही इस तकनीक द्वारा पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इवोक्ड पोटेन्शियल तकनीक द्वारा दृष्टि और श्रुति से संबन्धित तंत्रिका संस्थान को पूरी तरह परखा जा सकता है। इलेक्ट्रॉनिकी, कंप्यूटर विज्ञान एवं जैव चिकित्सा अभियांत्रिकी के सामंजस्य से उपजी इस तकनीक द्वारा दृष्टिहीनता अथवा बधिरता के अलग-अलग कारणों का निदान सहज ही संभव हो गया है।

इसी तरह अन्य नवविकसित यंत्र जो तंत्रिका शल्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, वे हैं कैट स्कैनर एवं एन.एम.आर. (न्यूक्लीयर मैगनेटिक रेसोनेंस) स्कैनर। कैट स्कैनर द्वारा ब्रेन ट्यूमर, हाइड्रोसिफेलस (जिसमें मस्तिष्क के भीतर द्रव अधिक हो जाने के कारण सिर फूलकर बड़ा हो जाता है) एवं अवघात सहित बहुत-सी महत्वपूर्ण तन्त्र सम्बन्धी समस्याओं का निदान सहज हो गया है। एन.एम.आर. स्कैनर का विकास अभी हाल में ही हुआ है। आज संसार के कुछ चिकित्सा केन्द्रों में एन.एम.आर. यंत्र भी इन समस्याओं के निदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से लेसर किरणें चिकित्सा के क्षेत्र में काफी सहयोग दे रही हैं। कार्बन डाई आक्साइड लेसर किरणों को मस्तिष्क के सूक्ष्म हिस्से में केन्द्रित कर मस्तिष्क के ट्यूमर को नष्ट किया जा सकता है। एक अन्य महत्वपूर्ण तकनीक, पराध्वानिक चूषित्र (अल्ट्रासाउंड एस्पीरेटर) है। इसका आधार अति सूक्ष्म ध्वनि तरंगें हैं, जो मानव की श्रवण शक्ति से बाहर हैं। इनके अतिरिक्त, अन्य अनेक यंत्र खोजे जा रहे हैं जो अभी आविष्कार की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं और अब ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में ही तंत्रिका शल्यचिकित्सक मस्तिष्क के हर कोने में पहुंच कर उसकी हर किस्म की मरम्मत कर पाने में सक्षम हो जायेंगे।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

स्टेनलेस इस्पात - प्रकार एवं उपयोग

डॉ. अरविन्द कुमार गुप्ता एवं अनूप कुमार
दि इंस्टिट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स
8 गोखले मार्ग, कलकत्ता - 700 020.

स्टेनलेस स्टील से सभी परिचित हैं। इसकी 200 से भी अधिक किस्में उपलब्ध हैं। इस लेख में इस्पात की कई किस्मों व उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

स्टेनलेस इस्पात की माँग दिन-प्रतिदिन तेजी से बढ़ती जा रही है। विश्व में इस्पात की माँग 5% वार्षिक की दर से बढ़ रही है। इस माँग-वृद्धि के मुख्यतः दो कारण हैं :

1. स्टेनलेस इस्पात एक बहुगुणीय व बहुप्रयोजनीय पदार्थ है। 'स्टेनलेस इस्पात' वास्तव में इस्पात की एक श्रेणी को दिया गया एक समूहगत नाम है, यह कई धात्विक प्रक्रमों पर आधारित होता है तथा इसमें सामान्यतया 10% से 30% तक क्रोमियम उपस्थित रहता है। विशिष्ट धात्विक संरचना, यांत्रिक गुणों तथा उपयोगात्मक व्यवहार को दृष्टिगत रखते हुए यद्यपि इसमें अन्य तत्व भी उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु संक्षारण प्रतिरोधकता तथा उच्च तापमान आक्सीकरण प्रतिरोधकता जैसे अतिविशिष्ट गुणों के लिए क्रोमियम की उपस्थिति अनिवार्य है।

इस्पात की 200 से भी अधिक किस्मों के गुणों का विस्तार भी अत्यन्त विशद है। इनका प्रयोग 1150 डिग्री सेल्सियस तक की शुद्ध ऊष्मीय प्रतिरोधकता के लिए, 900 डिग्री सेल्सियस तक प्रतिबल भंजन गुणों के लिए, परिवेशी तथा मध्यम तापमान पर उच्च सामर्थ्य के लिए, तथा अतिनिम्न तापमान पर श्रेष्ठ वाह्य-प्रभाव प्रतिरोधता एवं तन्यता के लिए किया जा सकता है। इन सबके अतिरिक्त, इनकी संक्षारकता प्रतिरोधकता तो सर्वोपरि है ही।

2. स्टेनलेस इस्पात के निर्माण में किये गये तकनीकी एवं उत्पादकता संबंधी सुधारों से स्टेनलेस इस्पात के मूल्यों में अन्य प्रतियोगी पदार्थों, जैसे प्लास्टिक तथा एल्यूमिनियम आदि की तुलना में पर्याप्त स्थिरता आयी है। पिछले पच्चीस वर्षों में इसके बाजार मूल्यों में, वास्तव में, प्रतिवर्ष 2% की कमी आयी है। मूल्यों में कमी उत्पादन स्तर पर बचत तथा प्रवर्धित ऊर्जा सक्षमता के साथ नई प्रक्रियात्मक तकनीकों, जैसे आर्गन-आक्सीजन विकार्बनीकरण, सतत् ढलाई, सतत् शीत-लुंठन तथा मृदुकरण प्रक्रम आदि के विकास एवं अनुप्रयोग के कारण संभव हो सकी है। इन विकासों के फलस्वरूप ही स्टेनलेस इस्पात को प्रक्रियात्मक उद्योगों के क्षेत्र में निर्माण इस्पात के रूप में स्थान प्राप्त हो सका है। इसके अतिरिक्त, आर्गन-आक्सीजन विकार्बनीकरण तथा इसकी सह-प्रक्रिया, निर्वात-आक्सीजन विकार्बनीकरण ने उच्चतर मिश्रधातु, स्टेनलेस आस्टेनिटिक तथा डुपलेक्स स्टेनलेस इस्पात निर्माण को दिशा प्रदान की है।

धातुकर्मी विकास

स्टेनलेस इस्पात को धातुकर्मी संरचना के आधार पर निम्न पांच श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1. फेरिटिक (पिंड, केन्द्रित, घनत्व, संरचना),

2. आस्टेनिटिक (फलक-केन्द्रित घनवत् संरचना),

3. डुपलेक्स (आस्टेनिटिक एवं फेरिटिक दोनों),

4. मारटेन्सिटिक (पिंड, केन्द्रित, चतुष्फलकीय लौह जालक में कार्बन का कठोर, अतिसंतृप्त ठोस विलयन), और

5. अन्य (उदाहरणार्थ अवक्षेपण कठोरीकृत)।

इस्पात के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त परिचय सारणी-1 में तथा अन्य विस्तृत सूचनाएं सारणी-2 एवं सारणी-3 में सूचीबद्ध हैं।

सारणी -1. विभिन्न स्टेनलेस इस्पातों का परिचय

प्रकार	आस्टेनिटिक	फेरिटिक	मारटेन्सिटिक	डुपलेक्स	अवक्षेपण
संघटन					
% क्रोमियम	15-27	11-30	11-18	18-27	12-28
%निकिल	8-35	0-4	0-6	4-7	4-25
%मोलिब्डेनम	0-6	0-4	0-2	2-4	1-25
अन्य	तांबा, नाइट्रोजन	-	-	तांबा, नाइट्रोजन	एल्यूमिनियम, टाइटेनियम,कोबाल्ट
यांत्रिक गुण					
यू टी एस (एम पी ए)	490-860	415-650	480-1000	680-900	895-1100
वाइएस (एम पी ए)	205-575	275-550	275-860	410-900	276-1000
इ एल (%)	30-60	10-25	14-30	10-48	10-35

सामान्य गुण एवं अनुप्रयोग

आस्टेनिटिक - ऊष्मीय उपचार के अयोग्य, अचुम्बकीय, सामान्य अनुप्रयोगों हेतु।

फेरिटिक - ऊष्मीय उपचार के अयोग्य, चुम्बकीय, श्रेष्ठ साधारण संक्षारण प्रतिरोधकता तथा सामुद्रिक अनुप्रयोगों हेतु।

मारटेन्सिटिक - ऊष्मीय उपचार द्वारा कठोरणीय, चुम्बकीय, उच्च सामर्थ्य भागों, पम्पों, वाल्वों तथा कागज मशीनरी अनुप्रयोगों हेतु।

डुपलेक्स - ऊष्मीय उपचार के अयोग्य, चुंबकीय, ऊष्मीय, विनिमायकों, अपशिष्ट जल उपचार तथा प्रशीतन कुंडलकों में अनुप्रयोग हेतु।

अवक्षेपण - ऊष्मीय उपचार द्वारा कठोरणीय, चुम्बकीय, उच्च सामर्थ्य युक्त, संक्षारण तथा ताप कठोरीकृत-प्रतिरोधी अनुप्रयोगों हेतु।

फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात

लौह में लगभग 11% क्रोमियम के मिश्रण पर प्राप्त पदार्थ में सामान्य वातावरण में संक्षारण प्रतिरोधकता पायी जाती है। क्रोमियम की मात्रा में वृद्धि से इसमें और अधिक सुधार परिलक्षित होता है। काफी लम्बे समय तक क्रोमियम की मात्रा को (कुछ विशिष्ट किस्मों को छोड़ कर) 18% से 20% तक सीमित रखा जाता रहा है, क्योंकि सीमा से अधिक क्रोमियम उपस्थित होने पर उत्पादन प्रक्रिया में कठिनाइयां का अनुभव किया गया है तथा अंतिम उत्पाद को अति भंगुर पाया गया है। उपस्थित क्रोमियम की मात्रा के आधार पर फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात को विशद रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया गया है :

1. 11% क्रोमियम फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात (उदाहरणार्थ प्रकार 409)

2. 17% क्रोमियम फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात (उदाहरणार्थ प्रकार 430)।

उत्पादन प्रक्रिया में कठिनाई का अनुभव क्रोमियम की उच्च मात्रा के अतिरिक्त, कार्बन व नाइट्रोजन के 0.1% तक के निम्न स्तर पर भी इनके भंगुरण प्रभाव के कारण भी होता है। आर्गन-आक्सीजन विकार्बनीकरण, निर्वात-आक्सीजन विकार्बनीकरण तथा निर्वात प्रेरण गालन, आदि की सहायता से कार्बन व नाइट्रोजन का 0.02% से भी निम्न स्तर प्राप्त करना संभव हो सका है। इस कारण ही फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात की एक पूर्ण श्रेणी का विकास हुआ है जिसमें उपस्थित मिश्र धातु वृद्धि के अनुसार मूल 11% क्रोमियमयुक्त इस्पात से लेकर 29% क्रोमियम, 4% मोलिब्डेनमयुक्त सुपरफेरिटिक इस्पात सम्मिलित हैं।

सारणी -2. कुछ विशिष्ट स्टेनलेस इस्पातों का संघटन

श्रेणी	प्रकार	क्रोमियम %	निकिल %	मोलिब्डेनम %	अन्य
फेरिटिक *	409	11.5	-	-	टाइटेनियम
	430	17	-	-	-
	434	17	1	-	-
	444	18	2	-	टाइटेनियम, नियोबियम
		26	1	-	नियोबियम
	3 सी आर 12	11.5	1.5	-	टाइटेनियम
	18 क्रोमियम-नियोबियम	18	0.2	-	0.6 नियोबियम, 0.3 टाइटेनियम
सुपर फेरिटिक * *		26	3	2	टाइटेनियम, नियोबियम
		26	4	4	टाइटेनियम, नियोबियम
		29	4	-	-
		29	4	2	-
आस्टेनिटिक* * *	18304	18	18	8	-
	304एल	18	9	-	-
हाईप्रूफ	304	18	8	-	0.15 नाइट्रोजन
	316एल	18	12	2.5	-
हाईप्रूफ	316	18	12	2.5	0.15 नाइट्रोजन
	317एल	18	14	3.5	-
हाईप्रूफ	317	18	14	3.0	0.15 नाईट्रोजन
317 एल एम एन		18	13	4.5	0.15 नाईट्रोजन
	320	18	12	2	टाइटेनियम
	321	18	10	-	टाइटेनियम
	904 एल	20	25	4.5	1.5 तांबा
	6 मोलिब्डेनम	20	20	6	0.20 नाईट्रोजन
डुपलेक्स	लीन	23	4	-	0.15 नाइट्रोजन
	22/5	22	5	3	0.15 नाइट्रोजन
	25 क्रोमियम	25	7	3.5	0.7 टंग्स्टन,0.7 तांबा, 0.25 नाइट्रोजन
नाइट्रिक अम्ल प्रकार	304 एल सिलिकान	18	9	-	4-5% सिलिकान
	304 एल "एनएजी"	18	10	-	निम्न अवशेष
	310 एल "एनएजी"	25	20	-	निम्न अवशेष

* कार्बन की मात्रा 0.03% से कम।
** कार्बन व नाइट्रोजन की मात्रा सामान्यत: 0.04% से कम।
*** एल प्रकारों में कार्बन की मात्रा 0.03% से कम।

सारणी -3. कुछ विशिष्ट इस्पातों के यांत्रिकीय गुण

श्रेणी	प्रकार	सामान्य वातावरणीय गुण				
		0.2 आर पी (एम पी ए)	आर एम (एम पी ए)	ई एल %	चार्पी जूल/वर्ग सें.मी.	भंगुर/तन्य संक्रमण 30 जे.(डिग्री से.)
फेरिटिक	409	205	380	20		
	430	205	450	22		
	434	245	430	17		
	444	275	415	20		
		310	470	20		
	3 सी आर 12	280	460	20	>60	-20
सुपर फेरिटिक	450	585	18			
	515	620	20			
	415	550	20			
	415	550	20			
आस्टेनिटिक	304	170	485	40	>200	<-196
	304 एल	170	485	40	>200	<-196
हाइप्रूफ	304	285	590	35	>200	<-196
	316	170	485	400	>200	<-196
हाइप्रूफ	316	315	620	35	>200	<-196
	317 एल	205	515	35	>200	<-196
हाइप्रूफ	317	315	620	35	>200	<-196
317 एलएमएन		285	580	40	>200	<-196
	320	205	510	40	>200	<-196
	321	210	510	40	>200	<-196
	904 एल	220	520	40	>200	<-196
	6 मोलिब्डेनम	300	650	35	>200	<-196
डुपलेक्स	लीन	400	600	25	>100	-80
	22/5	450	680	25	>100	-80
	25 क्रोमियम	550	750	25	>100	-80
नाइट्रिक	304 एल सिलिकान					
अम्ल	304 एल "एन ए जी"	170	485	40	>200	<-196
प्रकार	310 एल "एन ए जी"	205	510	40	>200	<-196

प्रकार 409 - 430 : 11% से 17% क्रोमियम युक्त
प्रकार 434 : 17% क्रोमियम, 1% मोलिब्डेनम युक्त
प्रकार 444 : 18% क्रोमियम, 2% मोलिब्डेनम
सुपरफेरिटिक स्टील : 26% से 29% क्रोमियम, 3% से 4% मोलिब्डेनम तथा शून्य से 2% निकिल युक्त

मूल 11% से 17% क्रोमियम युक्त इस्पात सर्वाधिक सस्ते हैं तथा इनकी संक्षारकता प्रतिरोधकता भी सबसे कम है। इनका उपयोग मध्यम संक्षारक वातावरण में तथा निम्न-मध्यम ताप के प्रति प्रतिरोधकता के लिए, जहाँ कुछ सीमा तक धात्विक क्षय भी सह्य हो, किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्रकार 409 का उपयोग वाहनों के उत्स्रावकों (एग्जॉस्ट पाइपों) में तथा प्रकार 430 का उपयोग घरेलू उपकरणों में किया जाता है।

लौह-क्रोमियम मिश्रधातुओं में मोलिब्डेनम के सम्मिश्रण से छिद्रन प्रक्रिया तथा सूक्ष्म विदर संक्षारण प्रतिरोधकता में उल्लेखनीय सुधार परिलक्षित होता है। 18% क्रोमियम-मोलिब्डेनम युक्त इस्पात, प्रकार 316 जैसे आस्टेनिटिक इस्पात के समान श्रेष्ठ क्लोराइड प्रतिबल संक्षारण प्रतिरोधकता प्रदर्शित करता है, परन्तु ढाले जाने की प्रक्रिया में कठिनाई प्रदर्शित करने के कारण इसका व्यापक स्तर पर उपयोग नहीं हो सका है।

उच्च मिश्रधात्विक सुपरफेरिटिक इस्पात क्लोराइड प्रतिबल अपस्फोटन के प्रति अग्राह्यता प्रदर्शित करते हैं। इनका उपयोग मुख्यतः सामुद्रिक ऊष्मा विनिमय नलिकाओं में, अधिक कीमती निकिल मिश्रधातुओं, अलौह मिश्रधातुओं तथा उच्च मिश्रधात्विक आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात के स्थान पर किया जाता है।

लौह क्रोमियम फेरिटिक संरचना की अंतर्निहित भंगुरता के कारण यह प्रकार केवल चादर के रूप में उपलब्ध होते हैं।

इस्पात का संधान प्रक्रम

संधानप्रक्रम में कार्बन या नाइट्रोजन के समाहरण को रोकने हेतु सावधानी अपेक्षित है क्योंकि इसके अवांछित परिणाम हो सकते हैं। संधान प्रक्रम में ऊष्मीय चक्र का नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि अत्यधिक कण वृद्धि तथा इससे HAZ क्षेत्रों में उत्पन्न भंगुरता को रोका जा सके। फेरिटिक संरचना में कार्बन व नाइट्रोजन की विलेयता इतनी निम्न होती है कि संधान प्रक्रम में सुग्राहीकरण प्रभाव तथा इसके कारण होने वाले अंतर्कणिक संक्षारण आक्रमण को रोकने हेतु न्यून मात्रा में स्थायीकारक तत्वों, जैसे टाइटेनियम अथवा नियोबियम के सम्मिश्रण की आवश्यकता होती है। इन स्थायीकारकों की अधिक मात्रा का परिवर्जन अपेक्षित है क्योंकि ये भंगुरता (विशेषतः संधान में) उत्पन्न करते हैं। तथापि, वर्तमान में हो रहे संधानित नलिकाओं के विशाल स्तर पर उत्पादन से इस बात का अनुमान अत्यन्त सहज है कि इस्पात निर्माण उद्योगों को संघटन पर पर्याप्त नियन्त्रण प्राप्त है।

11% क्रोमियम युक्त फेरिटिक स्टेनलेस इस्पात के परिच्छेद आकार तथा संधानीयता पर प्रतिबंध के निवारण के वर्षों में 3 सी आर 12 इस्पात के प्रवेश के साथ संभव हुआ है। इस इस्पात का विकास मूलरूप से उन निर्माण इस्पातों के जिनका उपयोग अपरदक व संक्षारक परिस्थियों में (जैसे खनन उद्योग में) किया जाता है, मूल्याधारित प्रतिस्थापन की दृष्टि से किया गया था। कार्बन की न्यून मात्रा वाले इस इस्पात के संघटन को इस प्रकार संतुलित रखा जाता है कि लगभग 800 डिग्री से. से उच्च तापमान पर भी कुछ आस्टेनाइट गुण इसमें निहित रह सकें, जबकि प्रकार 409 का इस्पात अपने गलनांक तक पूर्णतया फेरिटिक प्रकृति का ही रहता है। आस्टेनाइट गर्म लुंठित पट्टिका में सूक्ष्म-कणवत् संरचनाओं की उत्पत्ति में सहायक सिद्ध होता है तथा संधान प्रक्रम में HAZ क्षेत्रों में कण वृद्धि को रोकता है। वातावरणीय ताप पर फेरिटिक संरचना में उपस्थित निम्न कार्बन युक्त मारटेन्साइट उपयोगी दृढ़ता प्रदान करता है (सारणी-2)।

आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात

कुल स्टेनलेस इस्पात के बाजार का 80% भाग, आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात होता है। अभी तक सर्वाधिक प्रचलित इस्पात प्रकार 304 (18% क्रोमियम, 8% निकिल युक्त) है जिसका पिछले पचास वर्षों से व्यावसायिक उत्पादन किया जा रहा है। 18% क्रोमियम मिश्रधातु में 8% निकिल का सम्मिश्रण, एक ऐसे पदार्थ को जन्म देता है जिसमें अति निम्न तापमान से लेकर उच्च तापमान तक श्रेष्ठ तन्यता, दृढ़ता तथा सामर्थ्य आदि गुण

विद्यमान रहते हैं, साथ ही, फेरिटिक इस्पात के समान ही संक्षारण प्रतिरोधकता भी उपस्थित रहती है। आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात अत्यन्त परिवर्तनीय तथा सभी परिच्छेद आकारों पर सुगमता से संधानीय होते हैं।

मूल 18% क्रोमियम, 8% निकिल युक्त इस्पात में मोलिब्डेनम का सम्मिश्रण प्रतिरोधकता में महत्वपूर्ण सुधार लाता है। दुर्भाग्य से इसका उपयोग 3% से अधिक मोलिब्डेनम स्तर पर अनुभूत गर्म संचालनीयता समस्याओं के कारण तब तक नहीं किया जा सका, जब तक कि आर्गन-आक्सीजन विकार्बनीकरण द्वारा परिशोधित इस्पात उपलब्ध नहीं हुए। प्रकार 304 तथा प्रकार 316 (18% क्रोमियम, 10% निकिल तथा 2.5% मोलिब्डेनम) तथा इनके क्रमागत स्थायीकृत रूपों, जैसे प्रकार 321 तथा प्रकार 320 का उनके प्रक्रिया उद्योगों में विशाल क्षेत्र में उपयोगों के कारण बाजार में वर्चस्व स्थापित रहा।

आर्गन-आक्सीजन विकार्बनीकरण परिशोधित इस्पात में विभिन्न यायावर तत्वों के जिनका गर्म संचालनीयता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, वास्तविक उन्मूलन से उच्चतर मिश्रधातु स्टेनलेस इस्पातों का मितव्ययिता से उत्पादन संभव हो सका है। इनमें सामान्य, सूक्ष्म-दरार, अंतर्कणिक तथा क्लोराइड-प्रेरित प्रतिबल आदि संक्षारणों के प्रति अधिक प्रतिरोधकता निहित है। अवशेष तत्वों की न्यूनतम मात्रा सुनिश्चित किये जा सकने की सक्षमता से इस्पात के प्रकारों का, उनकी अंतर्कणिक संक्षारण प्रतिरोधकता के दृष्टिगत, विशिष्ट विकास संभव हो सका है।

इस्पात के अंतर्कणिक संक्षारण प्रतिरोधी प्रकार

चूँकि फेरिटिक स्टेनलेस इस्पातों की तुलना में आस्टेनिटिक इस्पातों में कार्बन की विलेयता अधिक है, अतः स्थायीकारक तत्वों के प्रयोग के स्थान पर उपस्थित कार्बन की मात्रा में कमी (सामान्यतः 0.03% से कम) द्वारा स्थायीकरण प्रभावों का परिवर्जन किया जा सकता है। वर्तमान समय में चूँकि कार्बन के निम्न मात्रा-स्तर के इस्पात-प्रकार सुगमता से प्राप्य हैं, अतः इनके उपयोग में वृद्धि परिलक्षित हुई है। इसके साथ ही, HAZ क्षेत्रों का अंतर्कणिक संक्षारण भी लगभग समाप्त हो चुका है।

विशिष्ट रूप से विकसित प्रकार 304 एवं प्रकार 310 (25% क्रोमियम, 2% निकिल युक्त) इस्पात, जिनमें कार्बन, फास्फोरस एवं सिलिकान जैसे अवशेषी तत्व सिर्फ निम्न मात्राओं में रखे जाते हैं, आक्सीकारक वातावरण, जैसे नाइट्रिक अम्ल में श्रेष्ठ अंतर्कणिक संक्षारण प्रतिरोधकता प्रदर्शित करते हैं। अधिक आक्सीकारक परिस्थितियों हेतु एक नये 4% से 5% सिलिकान युक्त इस्पात प्रकार 304 एल, एन ए जी का विकास किया गया है।

डुपलेक्स स्टेनलेस इस्पात

डुपलेक्स स्टेनलेस इस्पात अनेक वर्षों से उपलब्ध रहे हैं। ये आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पातों की तुलना में श्रेष्ठतर क्लोराइड प्रतिबल प्रतिरोधकता तथा उच्चतर नम्यता सामर्थ्य भी प्रदर्शित करते हैं। पूर्वकालिक रूपांतरों में, इनके फेराइट में रचनान्तरण तथा HAZ क्षेत्रों में कण वृद्धि प्रदर्शित करने के कारण, संधान प्रक्रम में दृढ़ता तथा संक्षारण प्रतिरोधकता में कमी परिलक्षित हुई। इन दोषों का निवारण नाइट्रोजन के उपयोग सहित संघटन के सावधानीपूर्ण संतुलन द्वारा संभव हो सका जिससे HAZ क्षेत्रों में उचित आस्टेनाइट स्तरों की उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकी। इस प्रकार नये डुपलेक्स इस्पात प्रकारों की एक श्रेणी का अभ्युदय हुआ, उदाहरणार्थ,

अनुत्पादनशील डुपलेक्स प्रकार : 23% क्रोमियम, 4% निकिल युक्त

22/5 प्रकार : 22% क्रोमियम, 5% निकिल एवं 3% मोलिब्डेनम युक्त

25 क्रोमियम प्रकार: 25% क्रोमियम, 7% निकिल, 3.5% मोलिब्डेनम (टंगस्टन, तांबा)।

नामतः 50: 50 आस्टेनिटिक : फेरिटिक संरचना पर आधारित उपर्युक्त प्रकार, प्रकार 304 जैसी सामान्य संक्षारण प्रतिरोधकता से लेकर 6% मोलिब्डेनम युक्त उच्च मिश्रधातु आस्टेनिटिक प्रकारों जैसी श्रेष्ठ संक्षारण प्रतिरोधकता तथा क्लोराइड प्रतिबल प्रतिरोधकता प्रदर्शित करते हैं। इनकी हाइड्रोजन सल्फाइड प्रेरित प्रतिबल सूक्ष्म विदर प्रतिरोधकता के कारण इनका तेल उद्योग में प्रयोग करने हेतु सघन परीक्षण किये जा रहे हैं।

अपनी संरचना में फेराइट की उपस्थिति के कारण उपर्युक्त डुपलेक्स प्रकार तन्य अवस्था से भंगुर अवस्था में संक्रमण प्रदर्शित करते हैं, परन्तु आस्टेनाइट

की उपस्थिति से निम्न तापमान पर भी समुचित दृढ़ता सुनिश्चित होती है। आस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पातों के लिए प्रयुक्त सभी विधियों का डुपलेक्स प्रकारों के संधान हेतु सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है।

स्टेनलेस इस्पात के विभिन्न उपयोग क्षेत्र

तेल क्षेत्र : ऊर्जा के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास तेल व गैस के तटवर्ती उत्पादन का है जिसमें तेल कूपों से तेल का निष्कर्षण सम्मिलित है। तेल एवं इस्पात, दोनों उद्योगों का तेल क्षेत्र में इस्पात के लिए वृहत्तर बाजार निर्माण में सम्मिलित योगदान रहा है।

उच्च मिश्रधातु आस्टेनिटिक एवं डुपलेक्स स्टेनलेस इस्पात, प्रशीतक जल नलिकाओं, अग्निशामक प्रणाली नलिकाओं तथा स्थिरक संरचनाओं के निर्माण में प्रयुक्त होने पर समुद्री जल का सामना करने हेतु मुख्य प्रतियोगी पदार्थ हैं। समुद्री जाल प्रवाहक नलिका प्रणालियों हेतु 6% मोलिब्डेनम युक्त इस्पात तथा 25% क्रोमियम डुपलेक्स इस्पात को 90:10 तांबा-निकिल इस्पात की तुलना में वरीयता प्रदान की गयी है, क्योंकि वे उच्चतर प्रवाह वेगों तथा प्रक्रम आकारों को सहन कर सकतें हैं तथा इनका भार एवं मूल्य भी उल्लेखनीय रूप से निम्न है।

विद्युत क्षेत्र : नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में इस्पात उद्योग ने उच्च समाकलता स्टेनलेस इस्पातों की उपलब्धता द्वारा उल्लेखनीय कार्य किया है। इन उच्च समाकलता इस्पातों में परिवर्धित नाइट्रिक अम्ल इस्पात तथा उच्च बोरान युक्त न्यूट्रान अवशोषण इस्पात सम्मिलित है। नवीन संयंत्रों के निर्माण के दौरान उच्च सामर्थ्य, मिश्रधात्विक 12% क्रोमियम युक्त इस्पातों का टरबाइन ब्लेड में अनुप्रयोग हेतु तथा नलिकाओं में प्रयोग बढ़ रहा है।

नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में स्टेनलेस इस्पात के सौर ऊष्मीय पैनलों का महत्वपूर्ण स्थान है। ज्वार शक्ति के अनेक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग हैं क्योंकि नदमुखी उपरोध विद्युत शक्ति के स्रोत रहे हैं। इन अनुप्रयोगों हेतु टरबाइन ब्लेडों तथा अनुषंगी उपकरणों में स्टेनलेस इस्पातों का उपयोग होता है।

पर्यावरण : पर्यावरण से संबद्धता के कारण स्टेनलेस इस्पात को एक महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र की प्राप्ति हुई है। उदाहरण हेतु कारों की उत्स्रावक प्रणाली में लगाये जाने वाले प्रेरण संपरिवर्तित्रों की संरचनात्मक धातु इस्पात प्रकार 409 या प्रकार 18 क्रोमियम-नियोबियम होती है जिसमें आंतरिक क्रोड के लिए प्रयुक्त उच्च क्रोमियम या एल्यूमीनियम युक्त इस्पात भी उपस्थित रहता है।

विद्युत शक्ति केन्द्रों में लगाये जाने वाले धूम्र गैस विसल्फरीकरण संयंत्र में अनुभूत प्रभावी भंग क्रियाविधियों में सूक्ष्म विदर संक्षारण तथा अम्ल तुषारांक संक्षारण प्रमुख हैं जो क्रमशः मुख्य प्रणाली वाहिकाओं अथवा पात्रों में क्लोराइड की उच्च मात्रा से तथा उत्स्रावक प्रणाली में परिलक्षित होते हैं। इस समस्या का प्रभावी दीर्घकालीन तथा मूल्यों की दृष्टि से श्रेष्ठतर समाधान, इस्पात प्रकार-316 तथा 6% मोलिब्डेनम युक्त इस्पात प्रकारों के निकिल आधारित मिश्रधातुओं के साथ संयुक्त प्रयोग से प्राप्त होता है। इसकी तुलना में अन्य विकल्प, जैसे आलेपित कार्बन इस्पात पर्याप्त प्रभावी नहीं है।

स्टेनलेस इस्पातों के अन्य अनुप्रयोग-क्षेत्रों में प्रक्रम उद्योग तथा उनकी संरचनात्मक इकाइयां सम्मिलित हैं।

''वैज्ञानिक'' के एजेन्टों से निवेदन

''वैज्ञानिक'' अध्ययन हेतु पत्रिका है; इसमें केवल पढ़ने के लिए सामग्री नहीं के बराबर होती हैं। अतः, एजेन्टों से निवेदन है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही इसकी प्रतियां मंगाएं। ''वैज्ञानिक'' की सामग्री कभी पुरानी नहीं होती है। अतः, बिकी हुई प्रतियों को वापस लेने की कोई व्यवस्था नहीं है।

- संपादक

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

कागज उद्योग के जल प्रदूषण का अध्ययन

डा. आर.एन. शुक्ला
प्रयुक्त रसायन विभाग
सम्राट अशोक टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट
विदिशा (म.प्र.)

पर्यावरण प्रदूषण आज की ज्वलंत समस्या है। कुछ उद्योग विशेषत: इस के जिम्मेवार हैं। कागज उद्योग से जल-प्रदूषण एक गंभीर समस्या है। इस लेख में इस समस्या पर विचार किया गया है।

मानव द्वारा प्रकृति के साथ खिलवाड़ कोई नई बात नहीं है। यह खिलवाड़ जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगिक उन्नति के साथ निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में औद्योगिक इकाइयों ने प्रदूषण की सभी सीमाओं का उल्लंघन कर पर्यावरण को असंतुलित कर दिया है। इस तारतम्य में केन्द्र सरकार ने 20 उद्योगों को अत्यधिक प्रदूषित माना है जिनमें से कागज उद्योग एक है। इस उद्योग से निकलने वाले रसायन जल में विलेय होकर दूषित पर्यावरण द्वारा जलीय, स्थलीय व वानस्पतिक जीवन को अपनी चपेट में ले रहे हैं, अतः इस जल-प्रदूषण से पर्यावरण को संतुलित रखने में सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

कागज उद्योग अधिक जल की खपत के साथ, अधिक दूषित जल उत्पन्न करता है। मोटेतौर पर प्रति दिन 100 टन कागज निर्माण वाली इकाई लगभग 30,000 से 40,000 घनमीटर दूषित जल वहि:स्राव के रूप में निष्काषित कर देती है।

विगत 10-15 वर्षों से कागज की अति अधिक माँग होने के कारण उद्योगों की क्षमता व संख्या, दोनों में वृद्धि हो रही है, जो कि वर्तमान में जल प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण है।

इस उद्योग में मुख्य रूप से भारी रसायन उपयोग में लाये जाते हैं, जो तन्तुमय कच्चे माल से क्रिया करके लुग्दी के साथ सोडियो लिग्निन, क्लोरो लिग्निन, डॉक्सीन (TCDD) क्लोरो साइक्लो हैक्सेन, क्लोरो फिनोल (EOCl) क्लोरोफार्म आदि बनाते हैं, जो जल को दूषित एवं विषैला कर देते हैं। इस प्रदूषण से बचाव के लिए कागज निर्माण व दूषित जल शुद्धीकरण प्रक्रिया के आधुनिकीकरण में तात्कालिक व दीर्घ कालीन योजनाओं का क्रियान्वन अनिवार्य होता जा रहा है।

कागज उद्योग में पर्यावरण-प्रदूषण के स्रोत

विभिन्न प्रकार के कागज निर्माण में विभिन्न प्रकार की विधियों का उपयोग किया जाता है जिनमें सल्फेट व सल्फाईट विधियाँ प्रमुख हैं। इन विधियों द्वारा कागज निर्माण को चार प्रभागों के माध्यम से अनेकों पदों में पूर्ण किया जाता है, जिनमें जल प्रदूषित होता है। जलप्रदूषण के स्रोत निम्न हैं :

1. पाचक प्रभाग - इस प्रभाग में लुग्दी निर्मित की जाती है। तन्तुमय कच्चा माल भारी रसायन ($NaOH$, Na_2S) रूपी सफेद द्रव से नियंत्रित परिस्थितियों में क्रिया करके सोडियम लिग्नेट, वसीय अम्ल, रोजिन, पन्टोजन ग्लाइकॉल को काले द्रव के रूप में निकालते हैं जो जल में विलेय होकर उसके पी. एच मान, जीव रसायन ऑक्सीजन माँग [BOD], रसायनिक ऑक्सीजन माँग [COD], कुलठोस, वृद्धि एवं रंग को काला भूरा करके दूषित करता है। [बड़ी इकाइयों में रसायन पुनः प्राप्तिसंयंत्र के माध्यम से इस प्रभाग के दोषों को कम किया जाता है]

2. विरंजक प्रभाग - पाचक प्रभाग से प्राप्त अविरंजक लुग्दी का विरंजनीकरण अनेकों पदों के समुच्चय द्वारा किया जाता है जो कि CEHH, CHEH, CEHP, CEHD, CHEP और CEDP [C = क्लोरीनीकरण, E = क्षारीकरण, H = हाइपो, P = परॉक्साइड, D = डाईऑक्साईड]। इन सभी पदों के समुच्चय में क्लोरोनीकरण पद महत्वपूर्ण है एवं यही पद क्लोरो कार्बनिक पदार्थ की अधिकता को बढ़ा देता है। ये अति अधिक अणुभार वाले, 2,3,7,8 टेट्रा क्लोरो डाई बेन्जोपैरा डाई ऑकसेन, (TCDD), डॉक्सीन, क्लोरो साइक्लो हैक्सेन, क्लोरोफिनोल, (EOCl) रोजिन, वसीय अम्ल

के क्लोरोव्युत्पन्न होते हैं, जो कि जल में घुलकर उसको अत्यधिक विषाक्त करते हैं।

3. कागज निर्माण प्रभाग - इस प्रभाग में कागज का निर्माण मशीन के द्वारा होता है जिससे दूषित जल कम निकलता है, फिर भी यह वहिः जल में निलंबित ठोस के साथ COD को भी बढ़ाता है।

4. रसायन पुनः प्राप्ति प्रभाग - इस प्रभाग में पाचक प्रभाग से प्राप्त काले द्रव को गाढ़ा करके बायलर में जला कर राख (स्मैल्ट) प्राप्त करते हैं जो चूने के साथ फॉस्टेसाइजिंग करके रसायन को पुनः प्राप्त करने में सहयोगी होता है। इस प्रभाग से निष्काषित जलमें पी.एच मान, निलंबित अशुद्धियों की अधिकता रहती है।

उपरोक्त सभी प्रभागों द्वारा दूषित किये जल के विश्लेषण परिणाम सारणी में दिये गये हैं।

जल प्रदूषण का निवारण

सामान्यतयः बहिःस्राव जल को शुद्ध करने के लिए उसे जल शोधक संयंत्र में एकत्रित करके सर्व प्रथम चलनी और ग्रिट कक्षों में से छान कर निलंबित ठोसों को अलग किया जाता है। शेष अशुद्धियों को दूर करने के लिए उस में चूना एवं एलम मिलाकर प्राथमिक निर्मलीकारक संयन्त्र में भेजा जाता है। यहाँ इसमें उपस्थित कोलायडी ठोस स्कन्दित होकर पृथक हो जाते हैं तथा जल अंशतः शुद्ध हो जाता है।

प्राथमिक निर्मलीकृत जल में हानिकारक बेक्टीरिया कीटों को नष्ट करने के लिए उसमें वायु प्रवाहित की जाती है, जिससे हानिकारक पदार्थों का ऑक्सीकरण भी हो जाता है तथा इस जल में उपयोगी बेक्टीरिया वायु जीवी ऑक्सीकरण द्वारा नाइट्रो व क्लोरो कार्बनिक पदार्थों को ऑक्सीलवणों में परिणित करते हैं। वायु के प्रवाह से जीव रासायनिक ऑक्सीजन की पूर्ति भी हो जाती है। इन लाभकारी जीवाणुओं के पोषण के लिए यूरिया व डाई अमोनियम फास्फेट भी डालते हैं। यह क्रिया बड़े टैकों में की जाती है। इन टैकों से प्राप्त जल को द्वितीयक निर्मलीकारक संयंत्र में भेजा जाता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक निर्मलीकारक टैंक के निचली सतह पर एकत्र पंक को निर्वात फिल्टरों द्वारा फिल्टरित कर पृथक कर लिया जाता है तथा हानिरहित बहिर्वाह को किसी प्रवाहशील नदी नाले में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में अधिक खर्च आने के कारण अधिकांशतः कम शुद्धिकृत बहिर्वाह को मुख्य धारा में प्रवाहित कर के जल प्रदूषित किया जाता है। वैज्ञानिकों ने इस खर्च को कम करने के लिए नवीन तकनीकी विकसित की है:

1- लुग्दी निर्माण विधि में नवीनीकरण

लुग्दी निर्माण के दौरान विभिन्न चरणों में नई तकनीकी द्वारा प्रदूषण का निवारण किया जा सकता है, जो क्रमशः निम्नलिखित है:

(अ) क्षारीयता द्वारा लिग्निन पृथक्करण - विरंजक लुग्दी निर्माण में यदि क्लोरीन की मात्रा को कम किया जाये, तो प्रदूषण कम होगा, अतः क्लोरीन की मात्रा को कम करने के लिए लुग्दी में लिग्निन की मात्रा का कम होना आवश्यक है, जो कि लुग्दी निर्माण के दौरान रसायन की मात्रा के साथ दाब, ताप एवं समय को बढ़ाने से होगी। इससे कम लिग्निन वाली लुग्दी प्राप्त तो होगी, परन्तु लुग्दी की मात्रा में कमी आने के साथ, आर्थिक भार भी बढ़ेगा। इस दोष को दूर करने के निम्न उपाय हैं

(i) क्रियाशील रसायन ($NaOH + 1/2\ Na_2S$) की सान्द्रता प्रारंभ में कम रखते हुए, बाकी के पूर्ण पाचनकाल के दौरान एक सी होना आवश्यक है।

(ii) पाचक द्रव में सल्फरता (सल्फीडिटी) हमेशा एक सी बनी रहना आवश्यक है।

(iii) पाचक द्रव में पाचन के दौरान विलेय लिग्निन की सान्द्रता हमेशा समान रखना आवश्यक है।

(ब) ऑक्सीजन द्वारा लिग्निन का पृथक्करण - विरंजनीकरण में ऑक्सीजन चरण क्लोरीन की मात्रा को कम कर देता है जिससे प्रदूषण कम हो जाता है। ऑक्सीजन लिग्निन पृथक्करण में अम्लीय माध्यम के साथ नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन परॉक्साइड रसायन का उपयोग करना उचित है।

(स) ऑक्सीजन और क्षारीयता द्वारा लिग्निन पृथक्करण- TOCl प्रदूषण को कम करने के लिए क्षारीयता द्वारा लिग्निन पृथक्करण प्रक्रिया में ऑक्सीकारक पदार्थों का उपयोग लाभकारी होता है।

2- विरंजनीकरण के दौरान बनने वाले डॉक्सीन का अपचयन -

यह तथ्य पूर्णतयः सत्य है कि डाई बैन्जीन पैराडॉक्सीन (DBD) TCDD के लिए अग्रदूत का कार्य करता है। यह क्लोरीनीकृत इलैक्ट्रोफिलिक एरोमैटिक प्रतिस्थापन के द्वारा अग्रसित होता है। क्रिया की गति इलैक्टोफिलिक आवेशित क्लोरीन एवं अग्रदूत पदार्थ की सान्द्रता पर आधारित

सारणी - वहि:स्राव एवं निर्मलीकृत जल का रासायनिक विश्लेषण

विवरण	पी.एच. मान	रंग प्लेटिनम इकाई	क्षारीयता $CaCo_3$ पी.पी.एम.	कुल ठोस पी.पी.एम.	निलंम्बित ठोस पी.पी.एम.	COD पी.पी.एम.	BOD पी.पी.एम.	तापमान ^{0}से.	विशेष विवरण
चिक प्रभाग	11.5	गहरा भूरा काला 3800	1159	2890	1800	2000	870	50	अधिक प्रदूषित पी.एच., रंग BOD व COD
वेरंजनीकरण प्रभाग									अम्लीय
1) क्लोरीनीकरण	2.1	क्रीमी भूरा पीला 280	480	2800	170	800	184	28	कम मिलावट ठोस व COD उच्च पी.एच.
2) क्षारीयकरण	9.4	गहरा भूरा 870	380	1484	178	1000	110	39	कम BOD व उच्च नि.ठोस
कागज निर्माण प्रभाग	7.6	सफेद 80	140	1040	790	640	140	38	उच्च निलंम्बित ठोस व कम BOD
सायन पुनः प्राप्ति प्रभाग	12.4	हल्का हरा 240	68000	80474	76407	600	120	40	उच्च पी.एच ठोस,BOD, COD
सम्पूर्ण मिलावट	8-9	हल्का भूरा काला 1410	940	2828	2100	740	290	38	-
प्राथमिक निर्मलीकृत	7.8	हल्का पीला 560	280	420	170	300	100	32	-
द्वितीयक निर्मलीकृत	7.5	सफेद पीला 180	140	148	72	210	50	30	पूर्ण शुद्ध

है। सामान्यतयः यह देखा गया है कि क्लोरीन की कम मात्रा TCDD की सान्द्रता को कम कर देती है, यदि क्लोरीन की मात्रा 0.17 से अधिक न रखी जाये तो, क्योंकि प्रारम्भ में क्लोरीन लिग्निन से क्रिया करती है, तत्पश्चात अन्य उत्पाद बनाती है, जिससे डॉक्सीन का क्लोरीनीकरण शीघ्रता से होता है और क्लोरीनीकरण के स्थिर समुच्चय में DBD का टूटना और TCDD का बनना होता है।

3- विषाक्तता व वहि:स्राव के बहाव पर नियन्त्रण

कागज उद्योग के वहि:स्राव जल में सबसे अधिक विषाक्त पदार्थ रोजिन अम्ल, असंतृप्त वसीय अम्ल के क्लोरो व्युत्पन्न, उदासीन डाईटरपीन, क्लोरो लिग्निन व उनके अन्य उत्पाद हैं। इस विष को दूर करने के लिए प्रायोगिक और आर्थिक रूप से उपयुक्त विधि जीवाणु द्वारा अपघटन व भौतिक रसायन विष निष्क्रियता है। जीवाणुओं के लिए समय की अधिकता, जीवाणु पोषणता, ऑक्सीजन की मात्रा, पी.एच मान का उचित होना अनिवार्य है, जब कि भौतिक रसायन औद्योगिक आधार पर कम सफल हैं। इन उपरोक्त दोषों को दूर करने के लिए निम्न नवीन तकनीकों को उपयोग अनिवार्य है :

(i) अवशोषण एवं आयन विनिमय विधि,
(ii) ऊर्णन एवं रसायन अवक्षेपण विधि,
(iii) झिल्ली तकनीकी विधि, और
(iv) वायवीय एवं ऑक्सीकरण विधि।

अनेकों वैज्ञानिकों ने अवशोषण के लिए दुर्बल धनात्मक रोजन (फिनोल फार्मल्डिहाइड बहुलक) के माध्यम से क्लोरो फिनोल 2,4,6 ट्राइक्लोरो फीनोल, ट्राई व टेट्रा क्लोरो ग्लॉइकाल को जो कि मुख्य रूप से मछलियों के लिए विष है, पृथक किया है।

ऊर्णन एवं रसायन अवक्षेपण से विरंजक वहि:स्राव विष को दूर करने में सहायक है। सूक्ष्म छनने का मुख्य लाभ छोटे अणु को निकाल कर BOD व COD के भार को कम करना है। आजकल सूक्ष्म छनन के साथ आयन विनिमय ऑक्सीकरण का समायोजन मुख्य रूप से विकसित किया जा रहा है। ओजोन उपचार भी उच्च विष, रंग, क्लोरीन फीनोल और ग्लाइकॉल की कमी के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है।

4- वहि:स्राव से सल्फर (TRS) उत्सर्जन पर नियन्त्रण

विदेशों में 70% कागज उद्योग, काले द्रव के ऑक्सीकरण द्वारा सल्फर को अपचयित करके उस उत्सर्जनता पर नियन्त्रण रखते हैं। यह प्रक्रिया सामान्यतयः प पदीय होती है जिसमें एक बड़े मिश्रण टैंक में वायु को प्रवा किया जाता है जो कि सोडियम सल्फाइट को सोडियम सल में बदल देती है। यह 70° से. - 75° से. तापमान पर होती

5- वायु जीवी व अवायु जीवी उपचार

आर्थिक रूप से अधिक खर्चीली विधियों का र पुनः अर्थ प्राप्ति के आधार पर विचार करें, तो उपरोक्त वि का नवीनीकरण करके आर्थिक लाभ लिया जा सकता सामान्यतयः वायु जीवी और अवायु जीवी जीवाणु के द्वा बहि:स्राव जल के कार्बनिक व अन्य दूषित पदार्थों का अपघ व ऑक्सीकरण करने से सड़न व गलन उत्पन्न होती है वातावरण की वायु प्रदूषित करती है। यदि इनकी सड़न-गल बंद उपकरण एवं वायु विहीन दशाओं में की जाये, तो (मीथे हाइड्रोजन, कार्बन मोनोऑक्साईड) ईंधन गैस बनाती है गंधहीन होती है तथा इसका कैलोरीमान 22,000 से 30,0 किलो जूल प्रति घनमीटर होता है। इसका उपयोग कागज निर्म में विद्युत ऊर्जा व ईंधन के रूप में कर आर्थिक लाभ किया सकता है।

उपयुक्त नवीन प्रक्रियाओं के द्वारा पर्यावरण प्रदूष के खतरे से बचा जा सकता है तथा कागज एवं लुग्दी की छो इकाइयों को भी आर्थिक रूप से लाभप्रद बनाया जा सकता इससे रसायन की क्षति पूर्ति के साथ, विद्युत ऊर्जा व ईंधन भी खपत कम की जा सकती है। इस विषय पर यदि वैज्ञानि अभियंता एवं उद्योगपति विशेष रूप से ध्यान दें, तो ज शुद्धिकरण को सरल, सहज व सस्ता बनाया जा सकता इस औद्योगिक विकास द्वारा पर्यावरण पर प्रदूषण के बढ़ते हु दबाब को कम किया जा सकता है व जल प्रदूषण समस्या समाधान भी निकाला जा सकता है।

''वैज्ञानिक'' का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका ''वैज्ञानिक'' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें। ''वैज्ञानिक'' के लिफाफे पर शुल्क सम्बंधी जानकारी दी जाती है। यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएं।

- संपादक

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

उड़न राख एवं पर्यावरण

डा. घनश्याम गुप्ता, भानु प्रकाश
प्रौद्योगिकी संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, एवं
रवि प्रकाश
अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान,
लखनऊ

उड़न राख (फ्लाई ऐश) तापीय विद्युत घरों में चूर्णित कोयले को जलाने से उत्पन्न उपजात है जो कि फ्लू गैसों में स्थिर विद्युत अवक्षेपित्रों की सहायता से एकत्र की जाती है। इसका उत्पादन इतना अधिक (वर्तमान में 25-30 मिलियन टन प्रतिवर्ष) होता है कि इसका विसर्जन आज भी एक समस्या बनी हुई है। उड़न राख में बड़ी मात्रा में विषैली धातुओं के ऑयन उपस्थित रहते हैं जो कि मुक्त होने पर पारिस्थितिक तंत्र को असन्तुलित कर देते हैं। पर्यावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने के लिए इसका उचित विसर्जन नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में उड़न राख से उत्पन्न पर्यावरण समस्याएं, एवं उनके निवारण पर प्रकाश डाला गया है।

इक्कीसवीं सदी में भारत औद्योगिक विकास के क्षेत्र में एक बड़ी छलांग के लिए तत्पर है। विकास को कायम रखने के लिए पर्याप्त ऊर्जा की आवश्यकता होगी। आगे आने वाले वर्षों में कोयला ऊर्जा का एक गौण स्रोत होगा। चूर्णित कोयले (Pelverised Coal) का उपयोग करने वाले नये तापीय विद्युत घरों की स्थापना से उड़न राख का उत्पादन एक उपजात के रूप में बढ़ेगा। बारीक पदार्थ जो कि अवक्षेपित्रों की सहायता से रोका जाता है, ''उड़न राख'' कहलाता है। यह या तो शुष्क दशा में भण्डारित किया जाता है या फिर घोल (Slurry) के रूप में विसर्जित कर दिया जाता है। ऐसा आकलन है कि वर्तमान में प्रतिवर्ष 25-30 मिलियन टन उड़न राख का उत्पादन होता है, जिसके वर्ष 2000 तक 90 मिलियन टन प्रतिवर्ष तक पहुँच जाने की सम्भावना है। निःसन्देह, इतनी बड़ी मात्रा का विसर्जन एक कठिन समस्या होगी। पिछले दो-चार वर्षों में विश्व इस तथ्य से अवगत हुआ है कि अन्य किसी भी चीज की तुलना में उड़न राख का भण्डारण अति घातक है। इस लेख में उड़न राख का पर्यावरण पर प्रभाव एवं प्रदूषण को कम करने हेतु इसके उपयोग का वर्णन किया गया है।

उड़न राख की प्रकृति : रासायनिक विश्लेषण (सारणी-1) से ज्ञात होता है कि सिलिकन, एल्युमिनियम, कैल्शियम, लोहा एवं मैग्नीशियम इत्यादि के आक्सॉइड उड़न राख के मुख्य अवयव हैं। यद्यपि एक्स किरण विवर्तन अध्ययन उड़न राख में ऍल्फाक्वर्ट्ज, इलाइट, ट्राइडाइमाइट, हेमाटाइट, कॉओलिनाइट आदि खनिजों की उपस्थिति को सिद्ध करता है, तथापि उड़न राख का संघटन उपयोग में लाये गये कोयले की गुणवत्ता और उसके दहन पर निर्भर करता है। सिलिका, एल्युमिना एवं हेमाटाइट के अंश उड़न राख के पोजोलॉनिक क्रिया के लिए उत्तरदायी हैं।

सारणी - 1. उड़न राख का संघटन

घटक	मात्रा (प्रतिशत/भार)
सिलिका	56.04
एल्युमिना	25.90
कैल्शियम आक्साइड	2.22
आयरन आक्साइड	1.26
मैग्नीशियम आक्साइड	0.94
गन्धक	0.02
दहन क्षय (200° से. पर)	13.64

स्रोत - ओबरा तापीय विद्युत घर, मिर्जापुर (उ.प्र.)

पर्यावरण समस्याएं : उड़न राख को दो प्रकार से विसर्जित किया जाता है, शुष्क दशा में भूमि पर एवं घोल के रूप में गड्ढों में। पहली दशा में यह वायु प्रदूषण उत्पन्न करती है।

सारणी - 2. उड़न राख से निक्षालित धातु-आयन और उनके विषैले प्रभाव

धातुएँ	विषैले प्रभाव	अनुमेय सीमा (मि.ग्रा./ली
आर्सेनिक	मानव व पशु कैन्सर, त्वचा ट्यूमर, यकृत कैन्सर, हीमैन्जियोथिलीओमा आदि पैदा करना	0.01
कैडमियम	शक्तिशाली कैन्सरजन के रूप में पशुओं के वृषणों में कैन्सर उत्पन्न करना, तेज बुखार, उल्टियाँ, श्यावता, रक्ताल्पता आदि	0.01
कॉपर	उच्च मात्रा में होने पर मनुष्यों एवं पशुओं मे उल्टियां, जठर दर्द, रक्तस्राव, ब्रास चिल्लस	0.01
लेड	कैन्सरजन, अतिघातक के रूप में वृक्कों को क्षतिग्रस्त करना, अनिद्रा, श्रांति, कब्जियत, मानसिक विक्षिप्तता आदि	0.01
क्रोमियम	शक्तिशाली कैन्सरजन के रूप में फेफड़ों, नाक एवं अन्य स्थानों पर कैन्सर पैदा करना, त्वक्शोथ, त्वक्व्रण आदि	0.01
निकिल	कैन्सरजन के रूप में नाक, आमाशय एवं हड्डी का कैन्सर पैदा करना, निकिल इच, चक्कर आना, विभ्रम आदि	0.05
जिंक	तेज बुखार, कंपकंपी, मुख सूखना, त्वक्शोथ, जिंक पॉक्स, आहारनाल का जलना, उल्टियाँ, मचली आदि	5.00

सारणी - 3. तापीय विद्युतघरों से 300 कि.मी. की दूरी के अन्तर्गत स्थित सीमेण्ट कारखाने

तापीय विद्युत घर	उत्पादित उड़न राख की मात्रा (टन/वर्ष)	सीमेण्ट कारखानें
दिल्ली-सी	48,000	डालमिया, दादरी
बदरपुर	-	भूपेन्द्र सीमेण्ट वर्क्स (ए.सी.सी.), सरोजपुर
ओबरा	50,000	चुर्क, डाला
नेल्लोर	33,000	विजयवाड़ा, किस्तना
बेसिन ब्रिज, मद्रास	13,000	डालमिया, डालमियापुरम्
बन्देल	1,30,000	सिन्दरी सीमेण्ट वर्क्स
पारस	66,000	-
भुसारल	74,000	-

यह पेड़-पौधों की पत्तियों में उपस्थित रन्ध्रों को बन्द कर देती है, फलतः वाष्पोत्सर्जन की क्रिया प्रभावित होती है एवं पौधा मर जाता है। उड़न राख के छोटे कण फेफड़ों के ऊतकों के लिए भी हानिकारक साबित हुए हैं। दूसरी दशा में, इसमें उपस्थित भारी धातु के ऑयन, विसर्जन तालाब में से निक्षालित होकर मृदा एवं जल प्रदूषण पैदा करते हैं। मृदाप्रदूषण में ये मृदा में उपस्थित सूक्ष्म एवं गुरू पोषक तत्वों का प्रतिस्थापित कर उसे अनुर्वरक बनाते हैं। इसी प्रकार, उपरोक्त विषैली धातुओं के ऑयन जल में पहुँचकर मनुष्यों एवं पशुओं में अनेक तरह के रोग (सारणी-2) पैदा करते हैं।

उड़न राख का उपयोग : उड़न राख का विसर्जन एक गम्भीर समस्या है। इसका विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है। इसका उपयोग इससे जुड़ी पर्यावरण समस्याओं को हल कर देगा या उन्हें कम कर देगा। विश्व के उड़न राख के मुख्य उत्पादकों में यूनाइटेड किंगडम अपने उत्पादन का 40% उपयोग कर लेता है; अन्य देश, मात्र 15-20% का उपयोग कर पाते हैं।

भवन उद्योग, देश में उत्पादित उड़न राख का अच्छा खासा भाग खपा सकता है। रिहन्द बाँध के निर्माण में प्रयुक्त सीमेण्ट के कुल भार की 15% उड़न राख थी। जवाहर सागर बाँध में 20% तक आंशिक प्रतिस्थापन द्वारा किया गया। नेवेली लिग्नाइट निगम अपने सभी भवन-निर्माण कार्यों में 20% उड़न राख का उपयोग करता है। राष्ट्रीय भवन संघ ने दिल्ली एवं मद्रास

में उड़न राख से युक्त घटकों के उपयोग से मकान बनाये हैं।

उड़न राख और पोर्टलैण्ड सीमेण्ट : भारत में प्रतिवर्ष 40 मिलियन टन से ज्यादा पोर्टलैण्ड सीमेण्ट का उत्पादन होता है, फिर भी भवन उद्योगों की माँग के हिसाब से यह मात्रा कम पड़ती है। इस कमी को पोर्टलैण्ड पोजोलॉना सीमेण्ट (पी.पी.सी.) में पोजोलॉना के रूप में उड़न राख का उपयोग कर पूरा किया जा सकता है। अन्य सभी देशों की तुलना में फ्राँस सीमेण्ट के निर्माण में उड़न राख के उपयोग में अग्रणी है एवं यह सीमेण्ट क्लिंकर में 50% तक उड़न राख का इस्तेमाल करता है।

पी.पी.सी. के उत्पादन की मुख्य कठिनाई उपयुक्त सूखी उड़न राख का उपलब्ध न हो पाना है, क्योंकि उड़न राख का अधिकांश भाग घोल के रूप में विसर्जित किया जाता है जिसमें पोजोलॉनिक गुण नहीं होते हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रतिदिन 1245 टन सूखी उड़न राख का उत्पादन होता है। उड़न राख के 20% अंश के उपयोग से, 2 मिलियन टन पी.पी.सी. प्रतिवर्ष उत्पादित की जा सकती है। उड़न राख को सीमेण्ट कारखानों तक ले जाना भी मँहगा है। तापीय विद्युत घरों से 300 कि.मी. दूरी के अन्तर्गत स्थित सीमेण्ट कारखानों की सूची सारणी-3 में दी गयी है। सीमेण्ट क्लिंकर का परिवहन व भण्डारण उड़न राख की तुलना में अधिक सरल है, इसलिए ऐसा प्रस्ताव किया जाता है कि क्लिंकर को तापीय विद्युत घरों के समीप में स्थित सीमेण्ट कारखानों तक ले जाना चाहिए और वहाँ पर क्लिंकर एवं उड़न राख की पिसाई की जानी चाहिए। यह कार्य-प्रणाली जन एवं धन के विचार से एक बड़ी बचत प्रदान करेगी।

चिनाई-सीमेण्ट : सामान्य कार्यों के लिए चूने के साथ प्रयुक्त सीमेण्ट में उड़न राख अधिमिश्रण के रूप में प्रयोग की जाती है। इस तरह से लगभग 20-25% सीमेण्ट प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

भवन ईंट :सीमेण्ट को चूना, उड़न राख एवं सोडियम सिलिकेट के साथ क्लिंकर के रूप में लेकर अच्छी गुणवत्ता की ईंटें या तो उपरोक्त पदार्थों को 1200 से. पर जलाकर या भाप से संसाधित कर तैयार की जा सकती हैं। आसनसोल में उड़न राख से ईंटों के बनाने का एक छोटा कारखाना कार्य कर रहा है। ट्रॉम्बे में एक प्रायोगिक संयंत्र उड़न राख से छिद्रिल खण्ड और ईंटों का निर्माण करता है।

संरचनात्मक-कंक्रीट : 15-20% उड़न राख रखने वाली कंक्रीट की शक्ति 90 या इससे अधिक दिनों के पश्चात की शुद्ध सीमेण्ट की कंक्रीट की सामर्थ्य के लगभग बराबर हो जाती है। उड़न राख कंक्रीट की कार्य-क्षमता को सुधार देती है और प्रारम्भिक एवं अन्तिम आदृढ़न समय को बढ़ा देती है। ऐसा पाया गया है कि बारीक मिलावे के 15% भाग का उड़न राख द्वारा प्रतिस्थापन कंक्रीट की संपीड़क क्षमता को बढ़ा देता है।

असंरचनात्मक-कंक्रीट : असंरचनात्मक कंक्रीट और द्रवचालित संरचनाओं में प्रयुक्त कंक्रीट के आंशिक प्रतिस्थापक के रूप में 35-40% तक उड़न राख का उपयोग किया जा सकता है।

हल्के भार वाली कंक्रीट : उड़न राख को आर्द्र करके उसकी टिकियां बनाकर एक उचित भट्ठी में उन्हें निसादित कर लिया जाता है। निसादित टिकियों का स्थूल घनत्व 1000 कि.ग्रा./घन मी. तक होता है और ये हल्की भार वाली कंक्रीट के लिए उपयुक्त होती हैं।

पूर्वढाँचित कंक्रीट : उड़न राख का उपयोग पूर्वढाँचित भवन इकाइयों, जैसे आर.सी.सी. संचार खम्भों, स्तंभों, दरवाजों और खिड़कियों के चौखट आदि के बनाने में किया जाता है।

उच्च क्षमता युक्त कंक्रीट : इस प्रकार की कंक्रीट उड़न राख का उपयोग दीर्घकाल जलयोजन एवं अतिरिक्त क्षमता देने वाली पोजोलॉना के रूप में करती है।

उच्च-प्लैस्टिकन कंक्रीट : बालू का अधिकता में उपयोग करने के बजाय, बेहतर होगा कि मिश्रण को अतिरिक्त संसंजकता प्रदान करने हेतु उड़न राख का उपयोग किया जाये।

बेलन संहतित कंक्रीट : इस विधि में कंक्रीट का संहनन बेलनों द्वारा किया जाता है। इस तरह से सीमेण्ट एवं उड़न राख का उपयोग कर 90 दिनों में 43 एम.पी.ए. कोटि की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

बहुआयामी उपयोग : यद्यपि उड़न राख का एक बड़ा भाग भवन निर्माण कार्यों में प्रयुक्त होता है, फिर भी इसके कुछ अन्य उपयोग निम्नलिखित हैं :

1. ऊसर भूमि के सुधार में : उड़न राख के नियन्त्रित प्रयोग से ऊसर मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में चमत्कारी सुधार होता है। इसके बाद, इस मिट्टी में धान एवं गेहूँ की खेती की जा सकती है। ऐसा प्रयोग मोतीलाल नेहरू फार्मर्स ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, फूलपुर, इलाहाबाद में किया गया है।

2. भूमि सुधार में पूरक के रूप में : बड़े-बड़े गड्ढों एवं घाटियों से युक्त भूमि को उड़न राख द्वारा समतल कर उसे खेती एवं भवन-निर्माण हेतु तैयार किया जा सकता है।

3. भूमि के स्थिरीकरण में : सड़कों, पुलों आदि के किनारे पर उड़न राख को मिट्टी के ऊपर बिछाकर एवं बेलन द्वारा संहनित कर भूमि के कटाव को रोका जा सकता है।

4. हवाई पट्टियों, राजमार्गों एवं बाँधों का निर्माण करना: उड़न राख के उपयोग द्वारा हवाई पट्टियों एवं राजमार्गों को ज्यादा मजबूत बनाया जा सकता है। इसी प्रकार, सीमेण्ट में

इसका 20% तक उपयोग कर शुद्ध सीमेण्ट की क्षमता के बाँध बनाये जा सकते हैं।

5. गहरे कुओं की खुदाई में स्कंदक के रूप में : चूँकि मृदा के कण ऋण-आवेशित होते हैं, कुओं की खुदाई के समय उड़न राख (धनात्मक धातु आयनों का पुंज) का स्कंदक के रूप में उपयोग कर ज्यादा आसानी से मिट्टी को हटाया जा सकता है।

6. प्रलेप एवं प्लैस्टिक के स्थान पर पूरक के रूप में: क्रोमियम (मुख्यतः षटसंयोजी) युक्त प्रदूषित जल के उपचार में प्रयुक्त उड़न राख की शक्ति में क्रोमियम के अधिशोषण के पश्चात् उल्लेखनीय वृद्धि होती है, अत: ऐसी उड़न राख की चादरें तैयार कर उन्हें सज्जा-सामग्री, तथा दीवारों के ऊपर प्रलेप एवं प्लैस्टिक के तौर पर उपयोग किया जा सकता है।

7. फिटकारी एवं वर्णकों के निर्माण में : उड़न राख में उपस्थित एल्युमिना का उपयोग फिटकारी के निर्माण में किया जा सकता है। उड़न राख में उपस्थित धातु के ऑक्साइड विभिन्न तापों पर एवं कणों के आकार में रंगीन होते हैं, जिनका वर्णकों के निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है।

8. वाहित मल, तेल, फिनाल, रंजक, भारी धातुओं के अधिशोषण में : उड़न राख को उपर्युक्त पदार्थों के विलगन में कई संस्थानों द्वारा अधिशोषक के रूप में उपयोग किया गया है, एवं उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

प्रस्तावित योजना

उड़न राख के आर्द्र भण्डारण के दौरान प्रदूषण-नियन्त्रण-युक्ति

मृदा-जल एवं उड़न राख की अन्योन्यक्रिया नियन्त्रित की जा सकती है

अवक्षेपण	अधिशोषण
चूने के उचित उपयोग द्वारा निकाय का पी.एच. 10.0रखने पर क्रोमियम, कॉपर और लेड अपने हाइड्राक्साइडों के रूप में अवक्षेपित हो जाएंगे।	विसर्जन तालाबों की तली में आयरन एवं मैंगनीज के आक्सॉइडों का अस्तरीकरण करने पर (हेमाटाइट एवं पायरोलुसाइट का सस्ते पदार्थों के रूप में उपयोग किया जा सकता है) निकिल, कैडमियम और जिंक उपर्युक्त ऑक्साइडों पर अधिशोषित हो जाएंगे।

9. मँहगे सक्रिय कार्बन को प्रतिस्थापित करने में : आज भी अधिकांश उद्योग अपने अपशिष्ट जल के उपचार में सक्रिय कार्बन का उपयोग करते हैं, किन्तु यह पदार्थ ज्यादा मँहगा होने से भारत जैसे विकासशील देशों के लिए उपयुक्त नहीं है, अत: इसके स्थान पर उड़न राख का उपयोग एक सस्ते अधिशोषक के रूप में किया जा सकता है।

उड़न राख संजाल (Fly Ash Network, FAN)

शोध एवं विकास तथा उड़न राख के विशाल भण्डार के सक्रिय उपयोग हेतु निम्नलिखित संस्थानों को समाहित करके एक 'उड़न राख संजाल' (फैन) तैयार किया गया है :

1. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2. रूड़की विश्वविद्यालय, रूड़की, 3. अन्नामलाई विश्वविद्यालय, मद्रास, 4. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, 5. क्षेत्रीय अभियान्त्रिकी कॉलेज, कुरूक्षेत्र, एवं 6. क्षेत्रीय अभियान्त्रिकी कॉलेज, राऊरकेला।

"फैन" संस्थानों के प्रथम चरण का कार्य उड़न राख के उपयोग पर उपलब्ध सामग्री का पुनरावलोकन करना, तत्कला वर्णन तैयार करना एवं आंकड़ा बैंक स्थापित करना है। इन संस्थानों ने उपरोक्त उपयोगों पर ही विशेष रूप से जोर देने की योजना बनायी है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि उड़न राख, वायु, जल एवं मृदा के लिए एक शक्तिशाली प्रदूषक है। विषैली-धातु-आयनों के एक बड़े वर्ग को यह अपने में समाहित किये रहती है जो कि पारिस्थितिक सन्तुलन के लिए एक भारी खतरा

है। इन धातु आयनों के निक्षालन के कारण उत्पन्न प्रदूषण को अवक्षेपण एवं अधिशोषण से नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके बढ़ते हुए भण्डार को विसर्जित करना अति आवश्यक है। इसके अधिकांश भाग का कई तरीकों से भवन उद्योग में उपयोग किया जा सकता है। सीमेण्ट के औसतन 20% भाग को इसके द्वारा प्रतिस्थापित करने से निर्माण की गुणवत्ता में समझौता किये बिना प्रतिवर्ष 1200 करोड़ रूपये बचाये जा सकते हैं। इस सीधी बचत के अलावा, इससे पर्यावरण प्रदूषण में उल्लेखनीय कमी होगी और स्वास्थ्य संकट घटेगा। उड़न राख से उत्पन्न प्रदूषण की समस्या को पूरी तरह से हल करने के लिए भविष्य में और अधिक शोध प्रयत्नों की आवश्यकता है।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

वेकिरणशील समस्थानिकों की उपादेयता

कु. पूजा तिवारी,
द्वारा राम प्रताप तिवारी
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम- रांची- 834 010.

आज विकिरण एवं विकिरणशील समस्थानिकों का प्रयोग मानव के हित के लिए कृषि, चिकित्सा विज्ञान और वैज्ञानिक शोधकार्यों में आशातीत सफलता के साथ होने लगा है। इनके द्वारा कृषि उपज, रोगों के निदान और उनके उपचार में अधिक विश्वसनीय परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। शोध-क्षेत्र में भी इस विधा के उपयोग से नये आयाम जुड़ रहे हैं और हमारा देश इस क्षेत्र में अपना अलग स्थान बना रहा है। भविष्य में हम इस विधा में चुनौतियों का सामना भी कर सकेंगे।

अद्यतन प्राप्त परिणामों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो या है कि नाभिकीय तकनीकों के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ते सम्प्रयोग त्यंत चमत्कारी एवं लाभप्रद हैं। भारत आज नाभिकीय कृषि क्षेत्र में अग्रणी है। प्रायः समस्त विश्व में नाभिकीय चिकित्सा द्धति का उपयोग रोगों के निदान और सफल उपचार हेतु हो ा है। इस दिशा में हमारे देश में भी साधन उपलब्ध हो रहे तथा अन्य वैज्ञानिक शोध, परीक्षण भी किये जा रहे हैं।

नाभिकीय चिकित्सा शास्त्र के विशद् क्षेत्र में विभिन्न टिल रोगों के शीघ्र और विश्वसनीय निदान के लिए मस्थानिकों का उपचार हेतु सफल उपयोग हो रहा है। इनमें छ तो प्राकृतिक रूप में ही उपलब्ध हैं, यथा रेडियम, और छ मानवनिर्मित हैं, यथा प्लूटोनियम। वास्तव में रेडियोधर्मी रमाणु अस्थिर होते हैं, तथा किसी स्थिर परमाणु में परिवर्तित ने के लिए इनमें विकिरण के माध्यम से ऊर्जा निकलती रहती । इस विकिरण को सही-सही मापा भी जा सकता है। इसी गुण ा उपयोग विकिरण समस्थानिकों द्वारा किसी रोग का सही दान करने में किया जाता है।

विकिरण जीवित कोशिकाओं के लिए घातक है, तएव इसका प्रयोग कैन्सर के उपचार हेतु प्रभावशाली ढंग किया जाने लगा है। आज विकिरणशील समस्थानिक बड़ी ख्या में उपलब्ध हैं। नाभिकीय चिकित्सा क्षेत्र में कुछ मानव ांगों के प्रति अधिक सजातीयता वाले रेडियोधर्मी पदार्थों को ई के द्वारा शरीर में पहुंचा दिया जाता है। ये पदार्थ अंगविशेष या ऊतकविशेष में अन्तर्हित हो जाते हैं। इस अंग या ऊतक से निकल कर आने वाले विकिरण को "गायगर मापक" से या तो माप लिया जाता है या फिर "मूविंग स्कैनिंग काउन्टर" के द्वारा चित्रित कर लिया जाता है। इस कार्य हेतु गामा कैमरे का उपयोग करते हैं।

गत दो दशकों की अवधि में नाभिकीय चिकित्सा विधाओं का आशातीत विकास हो चुका है और इसकी सहायता से शरीर रचना विज्ञान एवं अंगों के कार्य-कलाप का सूक्ष्म अध्ययन संभव हो गया है। वास्तव में 25 वर्ष पूर्व कुछ जटिल चिकित्सा विषयक समस्याओं की कल्पना भी नहीं की जाती थी। आज उन्हें हल करना सामान्य बात हो गयी है।

हृदय रोग विज्ञान एवं निदान के क्षेत्र में नाभिकीय चिकित्सा ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। इस विधा में विकिरणशील पदार्थ शिराओं या धमनियों में इंजेक्शन द्वारा पहुंचा दिया जाता है। इस कार्य को कई चरणों में किया जाता है ताकि रोगी पर विकिरण का प्रभाव न्यूनातिन्यून पड़े :

1. प्रथम विधि में भेजा गया पदार्थ रक्त में ही रहता है और एक मापक की सहायता से हृदय के चैम्बरों में उसके पहुंचने के ढंग का अध्ययन करते हैं जिससे हृदय की कार्यविधि के अतिरिक्त, इस तथ्य का भी पता चल जाता है कि हृदय की आंतरिक भित्ति में कोई छिद्र तो नहीं है।

2. इस विधि में ऐसे रेडियोधर्मी का व्यवहार किया जाता है जो हृदय की आंतरिक भित्ति पर एकत्र होते हैं, यथा

टेक्नीशियम-99 जो कोरोनरी थ्राम्बोसिस (हृदय अवरोध) से ग्रस्त भाग में एकत्र हो जाते हैं। यदि कोई अन्य भाग रोगग्रस्त होता है, तो ये पदार्थ वहां भी एकत्र हो जाते हैं और कैमरा पटल पर दृष्टव्य रूप में प्रकट हो सकते हैं।

3. तीसरी विधि में भविष्य की आशाएं निहित हैं, क्यों कि यह अभी प्रायोगिक स्तर पर ही है। इसमें रेडियोधर्मी ट्रेसर का प्रयोग करते हैं जो शरीर के ऊतकों और कोशिकाओं पर प्रभाव डालता हैं। इसके द्वारा हृदय रोग, संक्रमण, सूजन एवं रक्त प्रणालियों में अवरोध तथा शरीर में पोषक पदार्थों के असामान्य परिवर्धन के कारण के बारे में ज्ञात किया जा सकता है। अभी तक यह विशुद्ध वैज्ञानिक कथा मानी जाती थी, परन्तु निकट भविष्य में यह एक वास्तविकता हो जायेगी। इसका पूर्ण श्रेय मनोचिकित्सकों को जाता है जिनके प्रयोगों से विकिरणशील समस्थानिकों को मानव शरीर के विभिन्न अंगों में पहुंचाना संभव हो सका है। चिकित्सा निदान पर ही आधारित है और निदान में नाभिकीय पदार्थों ने मार्ग प्रशस्त किया है।

जब नाभिकीय पदार्थ सीमित से अधिक मात्रा में मानव शरीर में पहुंच जाते हैं, तो ये हानिप्रद सिद्ध होते हैं। अत्यधिक मात्रा में विकिरण से कैन्सर हो सकता है। नाभिकीय चिकित्सा में व्यय भी अधिक होता है, यथा केवल जांच अथवा निदान की लागत रू. 4000 तक हो सकती है। इसके लिए प्रयुक्त किये जाने वाले उपकरणों का भी मूल्य अधिक होता है। इतने सब कारकों के होते हुए भी, आज यह विधा एक अत्यंत विश्वसनीय रूप में विकसित हो रही है जिसके फलस्वरूप, मानव शरीर के अंतरंग परिवर्तनों को बिना किसी पीड़ा के सद्यः ज्ञात किया जा सकता है। आज **PET** (पोज़ीट्रान एमिशन टोमोग्राफ़ी) और **SPECT** (सिंगल फ़ोटान एमिशन कंप्यूटेड टोमोग्राफ़ी) जैसी नई तकनीकों की सहायता से रक्त प्रवाह में अवरोध संबंधी कोई असामान्यता को ज्ञात ही नहीं, बल्कि चित्रित भी किया जा सकता है। इन तकनीकों में विकिरणशील ट्रेसर पदार्थों का प्रयोग होता है। **PET** द्वारा शरीर की चयापचय क्रिया को मापा जा सकता है तथा छायाचित्र भी लिये जा सकते हैं जिससे अंग-प्रत्यंग की क्रियाशीलता और सुचारु कार्यविधि जानी जा सकती है।

विकिरणशील समस्थानिकों का ट्रेसर्स के रूप प्रयोग विशेष रूप से मस्तिष्क जन्य रोगों के निदान और अध्य क्षेत्र में किया जाता है, यथा अपस्मार, मस्तिष्कविभ्रम, मानसि अवसाद एवं पार्किन्सन्स रोग। **PET** स्कैनर वास्तव में मस्ति के गुप्तचर के रूप में कार्य करता है और इसका उपयोग विभि चेतना-ऊतकों में पोषक पदार्थों के अर्न्तग्रहण-पथ के बारे जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है, यथा शर्क के साथ कोई उपयुक्त विकिरणशील समस्थानिक को मिला दि जाता है। इस विकिरणशील समस्थानिक को कम ऊर्जा वा साइक्लोट्रान में अन्तर्हित करने के बाद ही प्रयोग में लाते यह समस्थानिक अल्प अर्ध आयु (हाफ़ लाइफ़) वाला हो है। इसे जब शरीर में स्थापित किया जाता है, तो इसमें विकिरणशील पोज़ीट्रान्स उत्सर्जित होने लगते हैं। इनके विलोप से दो प्रकार की गामा किरणों के रूप में ऊर्जा-विस्फोट की क्रि होती है। ये किरणें विपरीत दिशाओं में प्रकीर्ण होती हैं अ मुद्रिका परिपथ में डिटेक्टर्स के मणिभों से टकरा जाती हैं जिस मणिभों की प्रदीप्ति होती है। इस प्रदीप्ति को कम्प्यूटर में रिका किया जा सकता है और प्रत्येक बार की प्रदीप्ति एवं विकिर कर्ता पदार्थ की उपस्थिति-स्थान की सहायता से छायाचित्र रूप में इसका अनुवाद कर लिया जाता है।

SPECT तकनीक में व्यापारिक रूप से उपलब विकिरणशील समस्थानिकों का ही प्रयोग किया जाता है, जबकि **PET** तकनीक में साइक्लोट्रान का व्यवहार होता है साइक्लोट्रान का मूल्य व्यापारिक विकिरणशील समस्थानिकों क अपेक्षा बहुत कम होता है।

विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या ने कई विक समस्याओं को जन्म दिया है, यथा निर्धनता, रोग, भोजन क कमी, हिंसा एवं अपराधी प्रवृत्ति और रोज़गारों की कमी। कृषि उपज में वृद्धि और फसल सुरक्षा के लक्ष्य की पूर्ति के माध्य से हम भारत जैसे विकासोन्मुख देश में किसी सीमा तक भोज की कमी की समस्या का समाधान खोजने में भी नाभिकीय पदार्थ का प्रयोग करके सफलता का मार्ग प्रशस्त करने में सतत् संलग्न हैं। इस प्रकार, नाभिकीय कृषि विज्ञान की एक नवीनतम् विध विकसित की गयी है और इस दिशा में भाभा परमाणु अनुसंधा

केन्द्र ने कई आशातीत परिणाम प्रदान किये हैं। इन प्रयोगों में विकिरण अथवा विकिरणशील समस्थानिकों का सम्प्रयोग किया गया है। प्रकृति में होने वाले उत्परिवर्तन तो कदाचित् ही प्रकाश में आ पाते हैं, परन्तु विकिरण द्वारा प्राकृतिक उत्परिवर्तनों में वृद्धि अवश्य की जा सकती है। आज कृषि विज्ञान में उच्च उत्पादन वाली प्रजातियों का विकास विकिरण से प्रेरित उत्परिवर्तन द्वारा किया जा चुका है। इन नयी प्रजातियों के लिए उपयुक्त मृदा एवं दक्ष फसल प्रबंधन की आवश्यकता होती है। पर्याप्त और उपयुक्त उर्वरक तथा पौद्य संरक्षण में अनुज्ञापित तकनीकों के द्वारा सर्वोत्तम लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

इस दिशा में अनेक खाद्यान्नों के उत्परिवर्तियों का विकास किया जा चुका है। इनको पादप-प्रजनन के क्षेत्र में प्रयुक्त करके लगभग 14 नवीन उत्कृष्ट प्रजातियां व्यापारिक स्तर की फ़सल के निमित्त जारी की जा चुकी हैं। इनमें मूंगफली और पटसन की चार-चार, उड़द और सरसों की दो-दो तथा धान तथा पटसन की एक-एक प्रजाति है। इनके अतिरिक्त, कई अन्य चयनित प्रजातियों पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के शोध संस्थानों और राज्यस्तरीय कृषि विश्वविद्यालयों में परीक्षण जारी हैं। इस प्रकार अनुशंसित प्रजातियों को कृषकों के लिए उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी की गयी है।

सम्प्रति पादप-प्रजनन कार्यक्रम को, विशेष रूप से उच्चतम उत्पादन योग्य प्रजातियों के विकास की ओर निर्देशित किया गया है। इसमें पुनर्शोध के आधार पर ऐसे पौधों के विकास और परीक्षण पर जोर दिया जा रहा है जो जैविक कारकों (यथा रोगाणु, विषाणु, पेस्ट्स) एवं अजैविक कारकों (यथा मृदा-लवणता) आदि के प्रति सहनशील एवं प्रतिरोध क्षमता युक्त हों। इनके अतिरिक्त, बड़े बीज-आकार गुण, शीघ्र परिपक्वता अथवा विलम्बित परिपक्वता का गुण, प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता के गुणों को भी दृष्टिगत करके पौधों का विकास किया जा रहा है।

दालों में भा.प.अ. केन्द्र द्वारा शीघ्रपरिपक्वता वाली कई उत्तम प्रजातियों को विकसित किया गया है, यथा ट्राम्बे विशाखा-1 (135 दिन) और टीएटी-10 (115 दिन)। इन दोनों के बीज बड़े आकार वाले होते हैं और फ्यूज़ेरियम का प्रकोप भी इनके पौधों पर कम होता है। दालों में फयूज़ेरियम का अधिक प्रकोप हुआ करता है, अतः फ्यूज़ेरियम की पूर्ण रोधी प्रजातियों के विकास की ओर भी कार्य हो रहा है।

मूंग की एक उच्च-उत्पाद क्षमता प्रजाति, टीएपी-7 पाउडरी मिलड्यू नामक कवक के प्रति रोधक क्षमता वाली भी सिद्ध हो चुकी है। इसके अतिरिक्त, टी ए आर एम-2 को भी जो रबी में उगाने के लिए अनुशंसित है, जारी किया जा चुका है। मूंग की ही एक अन्य प्रजाति, टी ए आर एम -18 को जो मिलड्यू और मैक्रोफोमिना ब्लाइट, दोनों रोगों की प्रतिरोधी है, खरीफ़ में उगाने के लिए उपयुक्त पाया गया है, परन्तु इस पर अभी परीक्षण चल रहा है।

उरद की प्रजाति, टी ए यू - 1 जो शीघ्र पकने वाली एवं बड़े बीज आकार वाली प्रजाति है, वर्ष 1989 में कृषिहेतु जारी की जा चुकी है। वर्ष 1991 में अन्य प्रजाति, टी ए यू-2 को विदर्भ क्षेत्र में उपज के लिए अधिक उपयुक्त पाया गया। टी पी यू - 4 एक अधुनातन चयनित प्रजाति है जिसे मध्य भारत में कृषि हेतु अनुशंसित किया गया है। यह प्रजाति पीत किर्मीर विषाणु (Yellow Mosaic Disease) के प्रति सहनशील पायी जा चुकी है।

तिलहनी फ़सलों के सुधार की दिशा में मूंगफ़ली के पौधों के प्रजनन कार्यक्रमों में उच्च उत्पादन, अधिक तैलीय अंश को लक्ष्य मानकर कार्य किया गया। इन गुणों के अलावा, पौधों में फलियों की उत्कृष्टता, फलतः बीज आकार में वृद्धि, ताजे बीजों की प्रसुप्ति, छिलकों का प्रतिशत एवं विभिन्न अजैविक एवं जैव कारकों के प्रतिरोधी-क्षमता आदि गुणों को भी दृष्टिगत रखा गया है।

अंतर उत्परिवर्ती संकरणों के द्वारा टी जी-1, टी जी-3 और टी जी -17 जैसी उच्च उत्पादन क्षमता युक्त व्यापारिक स्तर पर कृषियोग्य प्रजातियों का विकास किया जा चुका है। हाल में भा.कृ.अ.प. के संयोजन से भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में विकसित प्रजाति, टी ए जी - 24 को महाराष्ट्र में कृषि के लिए तथा सोमनाथ प्रजाति को गुजरात के लिए अनुशंसित किया गया है। टी ए जी-24 के पौधे छोटे, गुच्छेदार होते हैं

जो खरीफ़, रबी और ग्रीष्मकालीन तीनों फ़सलों के लिए उपयुक्त हैं। सोमनाथ प्रजाति के पौधे विस्तारी स्वभाव वाले, शीघ्र तैयार होने वाले, बड़े बीजों वाले और अधिक तैलीय अवयव युक्त होते हैं।

सामान्यतया मूंगफली की सभी गुच्छेदार प्रजातियों में बीजसुषुप्ति नहीं पायी जाती है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में इस गुण का समावेशन टी जी-9, टी जी-17 और एक नई प्रजाति, टी जी -26 में किया जा चुका है। इसका परीक्षण अभी राज्यस्तर और देशस्तर पर किया जा रहा है। देश में मूंगफली के पौधों के विस्तारी स्वभाव और छोटी प्रशाखाओं वाली प्रजाति की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में अभी प्रजनन कार्यक्रम के क्षेत्र में सोमनाथ नामक प्रजाति के सुधार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

सरसों की दो प्रमुख चयनित प्रजातियां, टी एम-2 (काले बीजों वाली) और टी एम-4 (पीले बीजों वाली) संकर व्यापारिक उत्पादन हेतु अनुशंसित की जा चुकी हैं। तीन पृथक् स्थानीय परीक्षणों में जो अपारंपरिक क्षेत्रों में किये गये थे, टी एम-9 और टी एम-21 को सर्वोत्तम पाया गया है। ये दोनों ही तेल एवं बीज आकार की दृष्टि से उत्तम हैं। टी एम-18 शीघ्र तैयार होने वाली प्रजाति है जो 95-100 दिनों में तैयार हो जाती है। ये प्रजातियां जैविक और अजैविक अवरोधों से अप्रभावित रहती हैं तथा बहुफ़सली कृषिप्रणाली के लिए भी उपयुक्त हैं।

तिल के पौधों पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि हेटेरोसिस इनमें अधिक होती है जो अन्तर उत्परिवर्ती संकरों एवं उत्परिवर्ती कृषिजोपजाति संकरों, दोनों में ही देखी गयी है, अतः प्रयोगों को संकर ओजगुणों के विकास की ओर केन्द्रित किया गया है। एक बहु दल पुंजयुक्त उत्परिवर्ती भी विकसित किया जा चुका है।

प्रमुख खाद्यान्नों में धान की ''हरि'' प्रजाति पर जो आन्ध्र प्रदेश में बोई जा रही है, प्रसार कार्य प्रगति पर है। गेहूं में कण्डुवा रोग के प्रति प्रतिरोधक जीनों का प्रतिस्थापन भी चल रहा है। रेशेयुक्त एवं हरित खाद वाली फ़सलों में जूट की एक अधिक रेशा-उत्पादक कृषिजोपजाति, टी जे-40 को उड़ीसा के लिए विकसित किया गया है। सेस्बानिया एक हरित खाद की फ़सल है और इसमें अंतिम प्रयुक्त उत्पाद की मात्रा पौधे की कुल संहति पर आधारित है। यह पौधे अल्प प्रदीप्त पादप हैं और पर्याप्त मात्रा में संहति प्राप्त भी नहीं कर सकते हैं, अतएव प्रेरित उत्परिवर्तनों के द्वारा अल्प प्रदीप्ति के प्रति अप्रभावी जीनों के प्रारूप विकसित किये जा रहे हैं।

आधुनिक कृषि में जीवनाशी (पेस्टिसाइड) एक अभिन्न अंग के रूप में माने जाते हैं। इनके बढ़ते हुए प्रयोग से खाद्यान्न-उत्पादन में आशातीत वृद्धि हो रही है। इसका प्रभाव पर्यावरण के जैविक और अजैविक, दोनों ही कारकों पर पड़ रहा है। मिट्टी विविध प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियों और सूक्ष्म जीवों का आश्रय-स्थल है। ये सूक्ष्म प्राणी अवशिष्ट जीवनाशी पदार्थों को मिट्टी में रहते हुए कम विषाक्तता वाले या अधिक विषाक्तता वाले पदार्थों में परिवर्तित करते रहते हैं। दूसरी ओर, ये रसायन उन पर और उनकी क्रियाशीलता पर भी प्रभाव डालते रहते हैं, फलस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति में परिवर्तन होता है। इस दिशा में विकिरणशील समस्थानिकों का प्रयोग ट्रेसर तकनीकों द्वारा किया गया है। भा.प.अ. केन्द्र द्वारा मिट्टी में जीवनाशी के जैविक निम्नीकरण को कार्बन-14 के द्वारा अनुवीक्षण करके प्रदर्शित किया जा चुका है।

किसी जीवनाशी पदार्थ के खाद्य श्रृंखला में प्रवेश के पूर्व जैविक आवर्धन ज्ञात करने की दिशा में विकिरण चिन्हित जीवनाशियों का प्रयोग ''धान-मत्स्य-मृदा'' युक्त पारितंत्र में सफलता के साथ किया जा चुका है।

भा.प.अ. केन्द्र में किये गये नाभिकीय पदार्थों के मानव कल्याण हेतु शोध कार्यों एवं परीक्षणों से यह आशा बलवती होती जा रही है कि हमारा राष्ट्र भविष्य की विकट समस्याओं का हल किसी सीमा तक खोज निकालने में अवश्य सफल होगा और आने वाले समय में नाभिकीय कृषि विधा एवं चिकित्सा विज्ञान आदि की विधा में भी हम चुनौतियों का सामना कर सकेंगे।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1992) में अहिन्दी भाषी पुरस्कार प्राप्त

विलायक डीएस्फाल्टिंग तकनीक

गुरुबख्श सिंह डंग
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून- 248005.

प्रकृति से प्राप्त खनिज तेल से अधिक उपयोगी व ज्यादा कीमती उत्पाद प्राप्त करना आवश्यक है। विलायक डी एस्फाल्टिंग तकनीक इसमें सहायक है - प्रस्तुत लेख में इस विधि का ब्यौरा दिया गया है।

विलायक डीएस्फाल्टिंग (निर्डामरीकरण) एक द्रव-द्रव निस्सारण प्रक्रम है। यह पेट्रोलियम परिष्करण में एक भौतिक पृथक्करण विधि है। निर्वात आसवन के पश्चात बचे अवशेष खनिज तेल (क्वथनांक > 540 डिग्री सेल्सियस) से विलायक निस्सारण द्वारा अधिक श्यानता वाले स्नेहक तेल को पृथक किया जाता है। जिस खनिज तेल से स्नेहक तेल प्राप्त नहीं हो सकता, उस तेल के अवशेष से निस्सारित उत्पाद का उपयोग अन्य परिष्करण इकाई, जैसे हाइड्रोजनी भंजन या उत्प्रेरकीय भंजन आदि में फीडस्टाक के रूप में होता है। ये इकाइयाँ इस उत्पाद का रासायनिक रूपांतरण करती हैं और हमें अपनी आवश्यकता के मध्य-आसव-उत्पाद अधिक मात्रा में मिलते हैं। विलायक के रूप में पहले प्रोपेन का प्रयोग हुआ, अतः इसे प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग कहते हैं। बाद में अन्य पैराफिनिक विलायक जिनका अणुभार प्रोपेन से अधिक है, जैसे ब्यूटेन और पेन्टेन आदि का प्रयोग भी होने लगा। इन अपेक्षाकृत भारी विलायकों के प्रयोग के कारण प्रक्रम को अब भारी विलायक डीएस्फाल्टिंग कहते हैं। प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग का उपयोग मुख्यतः अधिक श्यानता वाले स्नेहक तेल में जिसे ब्राइटस्टाक कहते हैं, होता है। अन्य भारी विलायक प्रायः रूपांतरण प्रक्रमों के लिए अतिरिक्त फीडस्टाक उपलब्ध कराते हैं। हमारे देश में प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग इकाई केवल हल्दिया रिफाइनरी में है और अन्य दो स्थानों, मद्रास और हिन्दुस्तान पेट्रोलियम, बम्बई में इसकी स्थापना चल रही है।

प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग

प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग का उपयोग लगभग पिछले 50 वर्षों से ब्राइट-स्टाक उत्पादन के लिए हो रहा है। औद्योगिक पैमाने पर इस प्रक्रम में अवशेष खनिज तेल और विलायक प्रोपेन (द्रव/अवस्था में) को बड़े सम्पर्क उपकरण (जैसे आर डी सी या बैफ्ल कालम) में विपरीत सिरों से प्रवेश करा कर बीच की स्टेजों पर आपसी सम्पर्क कराया जाता है (चित्र-1)। यद्यपि प्रक्रम में तापमान और विलायक/फीडस्टाक का अनुपात फीडस्टाक के स्वरूप और लक्षित उत्पाद के आधार पर होता है, तथापि सामान्यतः तापमान 50-80 डिग्री से. के बीच और विलायक/फीडस्टाक का अनुपात, आयतन के अनुसार 6 से 13 के बीच रहता है। कालम के ऊपरी छोर से निस्सारित उत्पाद (डीएस्फाल्टिड तेल) तथा विलायक का मिश्रण और तली से एस्फाल्ट तथा विलायक का मिश्रण मिलता है। इन दोनों धाराओं से विलायक का वाष्पीकरण किया जाता है और विलायक वाष्प का संयुक्त रूप में द्रवीकरण (उच्च दाब पर) कर इसका प्रक्रम में पुनः चक्रण किया जाता है। विलायक की वरण क्षमता और घोलक शक्ति का समायोजन प्रक्रम की प्रचालन दशा बदल कर करते हैं जिससे ऐच्छिक गुणवत्ता वाले उत्पाद प्राप्त होते हैं। डीएस्फाल्टिड तेल का पुनः विलायक निस्सारण व विसिक्थन कर ब्राइट-स्टाक बनाते हैं। भाप के इंजिन के लिए प्रयोग होने वाले स्नेहक तेल, जिसे सिलेन्डर आयल कहते हैं, प्राप्त करने के लिए डीएस्फाल्टिड तेल का केवल विसिक्थन करते हैं। दूसरे उत्पाद एस्फाल्ट का उपयोग बिटुमिन बनाने में या रिफाइनरी ईंधन के रूप में करते हैं।

ब्राइट स्टाक (श्यानता लगभग 35 सेंटी स्ट्रोक, 100 से. पर) को कम श्यानता वाली स्नेहक तेल धाराओं (ल्यूब बेस स्ट्रीम्स) में समुचित अनुपात में मिश्रित कर विभिन्न श्रेणी के स्नेहक तेलों का उत्पादन करते हैं। इन तेलों की उपयोगिता और अधिक बढ़ाने के लिए इनमें आवश्यकतानुसार विशेष प्रकार के योज्य भी मिलाये जाते हैं। ये स्नेहक तेल मोटर कारों के इंजन में कार्यरत पुर्जों में, जैसे बियरिंग्स, पिस्टन रिंग और सिलेण्डर एसेम्बली आदि में घर्षण कम करते हैं, उत्पन्न ऊष्मा दूर करते हैं और इस प्रकार इंजन को जीर्ण-शीर्ण होने से बचाते हैं।

भारी विलायक डीएस्फाल्टिंग

प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम द्वारा अवशेष खनिज तेल से निस्सारित उत्पाद की प्राप्ति 20 से 50% तक होती है, जो कि फीडस्टाक के स्वरूप और प्रक्रम की प्रचालन दशा पर

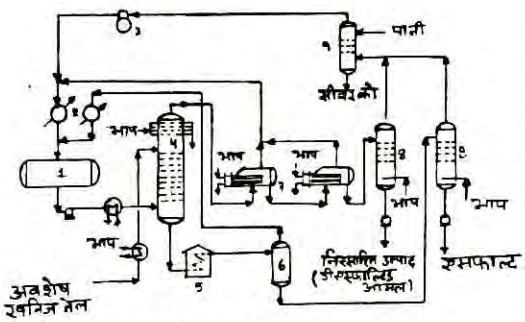

चित्र-1 प्रोपेन डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम

1- प्रोपेन टंकी, 2- द्रवणित्र, 3-संपीडित्र, 4- डीएस्फाल्टिंग कालम, 5- हीटर, 6- फ्लेश ड्रम, 7- प्रोपेन वाष्पित्र, 8- विपट्टक, ९- जेट द्रवणित्र

आधारित रहती है। चूँकि एस्फाल्ट उत्पाद के उपयोग सीमित हैं, इसलिए इसकी मात्रा घटाने के लिए अथवा निस्सारित उत्पाद की प्राप्ति बढ़ाने के लिए अवशेष खनिज तेल के निस्सारण/डीएस्फाल्टिंग में अपेक्षाकृत भारी विलायक, जैसे प्रोपेन-ब्यूटेन मिश्रण, ब्यूटेन और पेन्टन का प्रयोग करते हैं। इन विलायकों के प्रयोग से निस्सारित उत्पाद की प्राप्ति प्रोपेन की तुलना में 2 से 3 गुना बढ़ जाती है। प्रक्रम में प्रचालन दशाओं का चयन इस प्रकार करते हैं कि निस्सारित उत्पाद में एस्फाल्टीन्स की मात्रा 0.05% से कम रहती है, क्योंकि एस्फाल्टीन्स का लगभग पूर्णतया निराकरण करने से इसके साथ जुड़ी अन्य अशुद्धियाँ जैसे गन्धक, नाइट्रोजन, कार्बन अवशेष आदि की प्रतिशत मात्रा काफी कम हो जाती है। इन अशुद्धियों की मात्रा यदि फिर भी रूपांतरण प्रक्रम की स्वीकृति सीमा से अधिक रहे, तब इस उत्पाद का हाइड्रोट्रीटिंग (हाइड्रोसल्फराइजेशन, हाइड्रोडीनाइट्रीफिकेशन आदि) करते हैं और इसकी गुणवत्ता में सुधार लाते हैं। इस प्रकार प्राप्त उत्पाद का उपयोग या तो कम गन्धक वाले भट्टी के तेल के रूप में करते हैं, जिससे वायु प्रदूषण काफी कम होता है, और/या रूपांतरण प्रक्रमों में इसका भंजन कर आसवित उत्पादों की मात्रा में वृद्धि करते हैं। इससे कम उपयोगी और कम कीमत वाले अवशेष उत्पाद की मात्रा काफी घट जाती है।

विलायक का चयन और तुलना

पैराफिनिक हाइड्रोकार्बन विलायकों (प्रोपेन, ब्यूटेन और पेन्टेन) का चयन फीडस्टाक के स्वरूप और निस्सारित/डीएस्फाल्टिड उत्पाद के लक्षित उपयोग के अनुसार होता है। कम घनत्व वाले खनिज अवशेष के लिए प्रोपेन विलायक का, और अपेक्षाकृत अधिक घनत्व वाले अवशेष खनिज तेल के लिए ब्यूटेन या पेन्टेन का उपयोग होता है। प्रक्रम को और ज्यादा लचीला बनाने के लिए कभी-कभी दो विलायकों के मिश्रण का प्रयोग करते हैं। इस मिश्रण में अवयवों के अनुपात को बदल कर और साथ में तापमान तथा विलायक/फीडस्टाक के अनुपात का समायोजन करके निस्सारित उत्पाद की गुणवत्ता पर नियंत्रण कर सकते हैं। संक्षेप में विलायक चयन को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

1- स्नेहक तेल प्राप्ति के लिए प्रोपेन का चयन उत्तम है, क्योंकि यह केवल पैराफीनिक हाइड्रोकार्बन्स को निस्सारित करती है और कार्बन अवशेष का निराकरण करती है।

2- रूपांतरण प्रक्रम के फीडस्टाक की प्राप्ति के लिए प्रोपेन और ब्यूटेन मिश्रण लाभदायक है क्योंकि इससे निस्सारित उत्पाद की अधिक प्राप्ति होती है, जिसमें धातुओं की कम मात्रा रहती है।

3- पेन्टेन डीएस्फाल्टिंग द्वारा निस्सारित उत्पाद में मौजूद गन्धक को हाइड्रोसल्फराइजेशन द्वारा कम करके रूपांतरण प्रक्रमों के लिए फीड स्टाक या कम गन्धक वाले अच्छे ईंधन के रूप में प्राप्त किया जाता है।

ऊपर लिखित तीनों विलायकों की परस्पर तुलना (तालिका-1 और 2) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैसे-जैसे विलायक का घनत्व बढ़ता है, निस्सारित उत्पाद की प्राप्ति बढ़ती है, परन्तु उसकी गुणवत्ता घटती है और डीस्फाल्टिड तेल की बराबर प्रतिशत मात्रा पर भी गुणवत्ता घटती है।

डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम में कुछ नई दिशाएं

ऊर्जा संरक्षण : वर्ष 1973 तक ऊर्जा की कीमतें काफी कम थीं, अतः किसी भी प्रक्रम में खर्च होने वाली ऊर्जा की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, परन्तु 1973 में विश्व में तेल/ऊर्जा का गंभीर संकट पैदा हुआ और तब से ऊर्जा का प्रयोग काफी सोच समझ कर होने लगा। प्रत्येक प्रक्रम में ऊर्जा बचाने के प्रयत्न शुरू हो गये और प्रक्रम को अधिक मितव्ययी बनाया जाने लगा। इस को ध्यान में रखकर डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम में भी ऊर्जा बचत के प्रयास हुए, जैसे कि प्रक्रम में उपयोग होने वाले सम्पर्क उपकरण की क्षमता बढ़ायी गयी, अधिक और कम ताप वाली प्रक्रम धाराओं में ताप के अच्छे आदान-प्रदान के लिए अधिक क्षमता वाले उपकरणों (ताप विनिमायकों) का प्रयोग बढ़ा। साथ में विलायक की पुनः प्राप्ति के लिए लगे वाष्पीकरण उपकरणों की क्षमता में भी सुधार हुआ। विलायक की पुनः प्राप्ति में उठाये गए एक नये कदम में विलायक की पुनः प्राप्ति अतिक्रांतिक अवस्था में होनी शुरू हुई, उदाहरण के लिए कर-मैक्गी कम्पनी के रोज़ प्रोसेस और यू ओ पी कम्पनी

तालिका-1

विलायकों (प्रोपेन से पेन्टेन) की आपसी तुलना

विलायक	फीडस्टाक	प्रोपेन	डीएस्फाल्टिड तेल प्रोपेन (ब्यूटेन)	ब्यूटेन	पेन्टेन
प्राप्ति मात्रा%	100	29	46.8	67.3	82.8
ए पी आई	6.6	21	16	12.1	10.3
श्यानता, 100°से सी एस टी	1900	35	110	340	800
कार्बन अवशेष मात्रा% (कनराडसन)	22.1	1.5	5.0	10.6	14.0
गंधक मात्रा%	4.29	2.60	3.0	3.6	3.9
धातुए (पी.पी.एम.)					
"बेनोडियम"	70	1.1	2.5	7	23
"निकिल"	21	0.3	0.7	2.1	7
"लोहा"	49	0.7	1.7	4.9	16
		एस्फाल्ट (डामर)			
आपेक्षिक घनत्व	1.047	1.089	1.116	1.175	
सौफ्टानिंग बिन्दु° से.	160	225	270	390	
पेनीट्रेशन, 25°से. पर	5	0	0	0	

तालिका-2

विभिन्न विलायकों द्वारा प्राप्त डीएस्फाल्टिड तेल की गुणवत्ता (बराबर प्रतिशत प्राप्ति पर)

विलायक	प्रोपेन	पेन्टेन
डीएस्फाल्टिड तेल		
प्राप्ति मात्रा %	36.0	36.0
गन्धक, मात्रा %	2.66	3.17
नाइट्रोजन, मात्रा %	0.17	0.19
कार्बन अवशेष, मात्रा % (कनराडसन)	2.2	4.9
धातुएं **(पी.पी.एम.)**		
निकिल	2.2	5.9
वेनेडियम	5.1	12.9
लोहा	4.5	11.2

के डीमेक्स प्रोसेस, प्रक्रम में प्रयोग होने वाली बिजली, भाप और पानी (यूटिलिटीज़) आदि की लागत में लगभग 40% बचत सम्भव हुई।

खनिज तेल के संरक्षण में सहायता : तेल शोधक कारखाने में भारी डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम होने से खनिज तेल के संरक्षण में भी सहायता मिलती है। कम उपयोगी और कम कीमत वाले अवशेष खनिज तेल से निस्सारित उत्पाद का भंजन कर किसी खनिज तेल से प्राप्त होने वाले हल्के और मध्य आसवों की कुल उपलब्धता बढ़ती है। 40% निस्सारित उत्पाद प्राप्ति पर खनिज तेल की आवश्यकता 84%, और 75% निस्सारित उत्पाद प्राप्ति पर खनिज तेल की आवश्यकता घटकर 73% रह जाती है, जब कि बिना डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम का प्रयोग किये, मूल आवश्यकता 100% होती है।

डीएस्फल्टिंग में नये-नये विकास

डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम द्वारा ब्राइट-स्टाक और रूपांतरण प्रक्रमों के लिए अतिरिक्त फीडस्टाक प्राप्त करने के साथ-साथ, इसके कुछ अन्य नये-नये विकास/प्रयोग निम्न प्रकार हैं:

- अधिक मोम वाले खनिज तेलों (जैसे बम्बई समुद्र से प्राप्त तेल आदि) से बिटामिन प्राप्त करना।
- कम गन्धक की मात्रा वाले भट्टी तेल को प्राप्त करना जिससे वायु प्रदूषण में कमी होती है।
- डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम को किसी अन्य रूपांतरण प्रक्रमों, जैसे विस्ब्रेकिंग, हाइड्रोविस्ब्रेकिंग या एस्फाल्टीन बाटम क्रैकिंग के साथ जोड़कर अवशेष एस्फाल्टिनिक उत्पाद का पूर्णतया भंजन करना अथवा इसकी उपलब्धि को कम से कम करना।
- अधिक श्यानता वाले खनिज तेल को पेन्टेन डीएस्फाल्टिंग द्वारा कम श्यानता के खनिज तेल में बदलना (अपग्रेडेशन) जिससे पारम्परिक पेट्रोलियम परिष्करण उपकरण उपयोगी बने रह सकें।
- अन्य बेहतर एवं सस्ते विलायक की खोज निरन्तर जारी है। कार्बनडाइआक्साइड का विलायक के रूप में उपयोग प्रयोगशाला में काफी सफल सिद्ध हो रहा है। यह सस्ता, आसानी से उपलब्ध और निराविषी भी है, अतः भविष्य में इसके उपयोग की औद्योगिक पैमाने पर होने सम्भावना है।

उपसंहार

वर्तमान समय में विश्व तेल बाजार में अच्छे खनिज तेलों के मूल्य में वृद्धि तथा अपेक्षाकृत भारी व अधिक गन्धक वाले खनिज तेलों की उपलब्धता लगातार बढ़ रही है, अतः खनिज तेल संरक्षण और भारी खनिज तेलों को देखते हुए रिफाइनरीज में डीएस्फाल्टिंग प्रक्रम लगभग आवश्यक बनता जा रहा है। विश्व मुद्रा बाजार में भारतीय रुपये का अवमूल्यन तथा साथ में देश में खनिज तेल उत्पादन में आयी लगभग स्थिरता की स्थिति में भारत में पेट्रोलियम परिष्करण में डीएस्फल्टिंग तकनीक का भविष्य काफी उज्वल है।

नोबेल पुरस्कार किसे और क्यों?

कण भौतिकी में बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक के अनुप्रयोग

डा. रजनीकांत चौधरी
वैज्ञानिक अधिकारी
नाभिकीय भौतिकी प्रभाग
भा.प.अ. केन्द्र, बम्बई - 400085

वर्ष 1992 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सर्न (CERN) की कण भौतिकी प्रयोगशाला के डा. जार्जस चारपॉक को दिया गया। यह पुरस्कार उन्हें उनके 1968 में किये गये आविष्कार, बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक (एम.डब्ल्यू.पी.सी.) के लिए प्रदान किया गया। इस उपकरण का प्रयोग संसार की कई कण-भौतिकी प्रयोगशालाओं में प्रचुर मात्रा में किया जाता है। इससे कणों के आयनन पथ का निर्धारण किया जा सकता है। सदियों से भौतिकविदों की यह कोशिश रही है कि वे पदार्थों की मौलिक संरचना की जानकारी प्राप्त करें। इसलिए वे तरह-तरह के नये कणों की खोज में लगे रहे हैं। पहले यह काम फोटोग्राफिक प्रणालियों से संपन्न होता था जिसके लिए मेघकोष्ठ (क्लाउड चैम्बर), फोटोग्राफिक इमल्शन और बुदबुदा कोष्ठ (बबल चैम्बर) जैसे संसूचकों का इस्तेमाल होता था। इन सब अनोखे संसूचकों के आविष्कारकों को भी नोबेल पुरस्कार दिये जा चुके हैं। लेकिन बुदबुदा कोष्ठ जैसे संसूचक से जो फोटोग्राफिक पद्धति पर काम करता है, कण संसूचन और विश्लेषण का काम शीघ्रता से संभव नहीं हो सकता था।

वर्ष 1968 में डा. चारपॉक ने यह साबित किया कि उनके बनाये बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक से कणों के आयनन पथ का इलेक्ट्रॉनिकी तरीके से अति सूक्ष्मता और तीव्र गति से विश्लेषण किया जा सकता है। इस नये आविष्कार से कण संसूचन क्षमता पहले से कई लाखों गुना ज्यादा बढ़ गयी।

बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक की कार्य प्रणाली

जब भी कोई उच्च ऊर्जा वाला कण एक गैस माध्यम में से गुजरता है, तो वह आयनन का एक पथ पैदा करता है, जिसमें इलेक्ट्रॉन और धनायन युग्म होते हैं। इस गैस माध्यम को अगर एक विद्युत क्षेत्र में रखा जाय तो इलेक्ट्रॉन और आयन उसमें गतिशील होकर इलेक्ट्रोड में एक स्पंदन पैदा करते हैं। इसी मूल आधार पर 1908 में रदरफोर्ड और गायगर ने एक गैस संसूचक बनाया था जो गायगर काउंटर के नाम से प्रसिद्ध है। यह गणित्र (काउंटर) एक बेलनाकार कोष्ठ से बनाया जाता है जिसके केंद्रीय अक्ष में अति उच्च वाल्टता का एक सूक्ष्म तार रहता है। आयनन के इलेक्ट्रॉन जब तार के समीप पहुँचते हैं तो उच्च विद्युत क्षेत्र के कारण उनकी ऊर्जा परिवर्धित हो जाती

परिचय

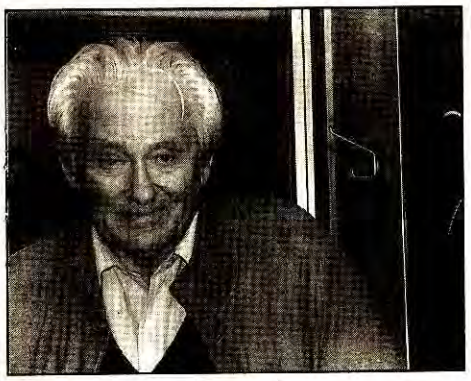

जार्जस चारपॉक

डा. चारपॉक का जन्म 1924 में पोलैंड में हुआ था। उन्होंने अपनी शिक्षा फ्रांस में प्राप्त की। वे अब फ्रांस के नागरिक हैं। शिक्षा समाप्ति के बाद, कुछ वर्ष उन्होंने कॉलेज डि फ्रांस की जूलिएट-क्यूरी प्रयोगशाला में शोध की जहाँ उनको कण-संसूचन क्षेत्र में मौलिक ज्ञान प्राप्त हुआ। वे 1959 में योरोप की गौरवास्पद कण-भौतिकी प्रयोग-शाला, सर्न (CERN) में आये। वे नये उपकरणों के एक अनोखे अभिकल्पी हैं। 1968 में उन्होंने कुछ सहयोगिओं के साथ मिलकर बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक का आविष्कार किया। उन्होंने इस उपकरण की कार्यप्रणाली और क्षमताओं का पूरी तरह से अध्ययन करके इसे उप-परमाणु कणों के संसूचन और पथ-निर्धारण के लिए प्रयोग किया। वे बहुत-ही सरल, लोकप्रिय और मिलनसार हैं। उन्होंने 1989 में सर्न प्रयोगशाला से अवकाश प्राप्त किया, परन्तु इसके बाद भी उनके सहकर्मियों ने उस ग्रुप को "चारपॉक ग्रुप" के नाम से ही कहलाने का निश्चय किया। नोबेल पुरस्कार प्राप्ति की खबर सुनकर डा. चारपॉक को बहुत आश्चर्य हुआ, लेकिन सर्न प्रयोगशाला के निदेशक, जेनेरल कार्लो रूब्बिया के मत में डा. चारपॉक इस पुरस्कार के योग्यतम व्यक्ति हैं, क्योंकि इनका संसूचक सर्न के प्रत्येक मुख्य आविष्कार का मूल आधार रहा है।

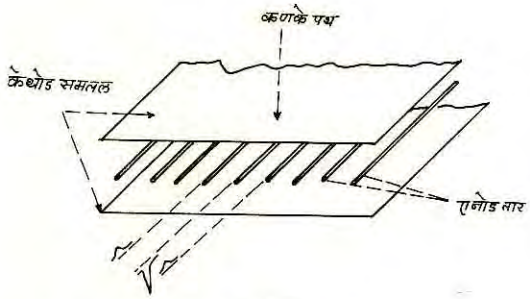

चित्र - 1 एक विमीय बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक

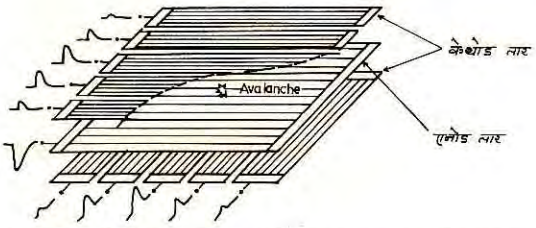

चित्र - 2 द्विविमीय बहुतारीय गैस अनुपातिक संसूचक

है और इस प्रकार आयनन क्रिया का संवर्धन हो जाता है तथा बहुत-सी छोटे क्षण, माइक्रो सेकंड में एक प्रवर्धित विद्युत स्पंदन तार में उत्पन्न हो जाता है। इसी काउंटर का प्रयोग आजकल गामा, बीटा विकिरण के अनुवीक्षण में बहुतायत से किया जाता है।

डा. चारपॉक का संसूचक भी ऐसे ही नियम पर आधारित है। उनके संसूचक में एक तार के बदले बहुत से तार 1-2 मि.मी. की समान दूरी पर एक समतल में रखे जाते हैं जिसको ऐनोड समतल कहा जाता है (चित्र -1) उन्होंने यह सिद्ध करके दिखाया कि ऐसे संसूचन कोष्ठ में, हर एक तार एक पृथक गायगर काउंटर जैसा काम करता है। जब भी कोई कण इस संसूचक में से पार होता है, तो जिन तारों के समीप से वह गुजरता है, उन सभी में स्पंदन उत्पन्न करता है। अगर हर तार का स्पंद संगणक में रिकॉर्ड किया जाय या दूसरी किसी पद्धति से उस तार का पता लगाया जाय जिसमें स्पंद पैदा हुआ है, तो हमें कण के पथ की स्थिति का पता लग सकता है और यह काम माइक्रो सेकंड में सम्पन्न किया जा सकता है। इससे कण का एक ही निर्देशांक प्राप्त किया जा सकता है। द्विविमीय बहुतारीय अनुपातिक संसूचक (चित्र-2) से कण के दोनों निर्देशांकों का माप किया जा सकता है। इन्हीं संसूचकों से कणों

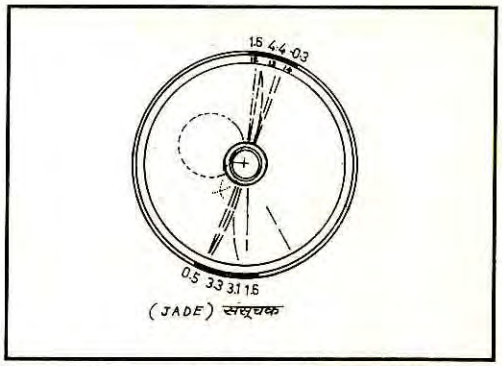

चित्र - 3 गैस अनुपातिक कोष्ठ से प्राप्त कणों के पथ

का स्थान विभेदन 10 से 20 माइक्रोन तक संभव हो सकता है और यह काम संगणकों की सहायता से बहुत ही जल्दी किया जा सकता है। आजकल की त्वरक प्रयोगशालाओं में इन संसूचकों को चुम्बकीय क्षेत्र में रखा जाता है, फलस्वरूप तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र में कणों के पथ की वक्रता या गोलाई और संसूचक में आयनन की सघनता से कण की पहचान और भी आसानी से हो सकती है (चित्र - 3)। डा. चारपॉक और उनके सहयोगियों ने इन संसूचकों में अनेक संशोधन भी किये। सबसे महत्वपूर्ण संशोधन यह है कि इलेक्ट्रॉन स्पंदन के संवहन-समय का माप करना, जिससे संसूचन की विश्लेषण-क्षमता कई गुना बढ़ जाती है एवं कणों के पथ के विभेदन में सहायता मिलती है। अगर चारपॉक को हम सभी आधुनिक गैस अनुपातिक और संवहन कोष्ठ संसूचकों का जन्मदाता कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन संसूचकों से कणों के पथ का इलेक्ट्रॉनिकी तरीके से फोटोग्राफ भी लिया जा सकता है।

पिछले कई वर्षों से डा. चारपॉक का झुकाव कण-भौतिकी से अलग, जीव-विज्ञान और चिकित्सा की ओर हुआ है। उन्होंने एक विशेष गोलीय बहुतारीय कोष्ठ का अभिकल्पन किया जिससे विस्तृत परिमाप में भी एक-समान स्थान-विभेदन मिल सकता है। एक ऐसे बहुतारीय गैस कक्ष से प्राप्त रेडियोग्राफ में एक चूहे के गुर्दे का चित्र, प्रचलित प्रणाली की तुलना में सौ गुने से भी ज्यादा शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है।

डा. चारपॉक के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने से यह साबित हो गया है कि भौतिकी अनुसंधान में न केवल मौलिक सिद्धान्तों का ही महत्व है, बल्कि नयी तकनीकों और नये उपकरणों का भी उतना ही महत्व है। उनका आविष्कार जितना मौलिक शोधों में उपयोगी है, उतना ही अनुप्रयुक्त शोधों में सहायक सिद्ध हुआ है।

रासायनिक संयोग-विज्ञान

डा. अर्जुन दास
केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान,
रुड़की (उ.प्र.) - 247667

हमारे दैनिक जीवन में मानव निर्मित ऐसी वस्तुओं का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है जिनको न हम पहले जानते थे और न ही उनकी सम्भावनाओं से परिचित थे। मानव की आज की प्रगति में रसायनशास्त्र द्वारा विकसित वस्तुओं का योगदान बहुत अधिक है।

पदार्थों में होने वाले विकास मुख्यतः रासायनिक दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं, संगठनात्मक तथा संयोगात्मक। पहले प्रकार के विकास विशेषतः बहुलीकरण तथा संश्लेषण से सम्बंधित हैं। दूसरी प्रकार की विकास क्रियाओं में संयोग का कार्य मुख्य है। इन क्रियाओं पर अनेक रासायनिक उद्योग आधारित हैं।

ये क्रियाएं इस सामान्य प्रश्न पर आधारित हैं कि यदि कोई दो या दो से अधिक ऐसे पदार्थ जिनकी प्रकृति अलग-अलग प्रकार की हो और जो आपस में पूर्णतः असंगत हों, तो उनको कैसे जोड़ा जाए और नये प्रकार का उत्पाद कैसे बनाया जाए। औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उत्पाद जो इस श्रेणी में आते हैं, उनमें अधिकतर वे हैं जिनका एक संघटक पानी होता है और दूसरा कोई ऐसा जो भौतिक अथवा रासायनिक रूप से पानी से संगति नहीं करता, जैसे तेल, कृत्रिम रेजिन, वसा, मोम अथवा कोई खनिज पदार्थ। ऐसी स्थितियों में सबसे सरल रासायनिक उपाय क्या हो सकता है, इस पर विचार एक महत्व का विषय है जिसको स्पष्ट करने का प्रयत्न यहां किया गया है।

रासायनिक असंगति

रसायनज्ञ यह भली-भाँति जानते हैं कि सामान्य क्रियाएं, अभिकारकों तथा उत्पादों की आंतरिक ऊर्जा पर निर्भर करती हैं। सभी क्रियाओं के प्रारम्भ होने तथा पूर्ण होने के लिए या तो अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है या क्रिया के फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है। यदि उत्पादों की आंतरिक ऊर्जा कम हो, तो क्रिया सरलता से हो जायेगी और उसमें ऊर्जा की कुछ मात्रा ताप के रूप में अथवा किसी अन्य रूप में निकल जाएगी, परन्तु यदि उत्पाद अभिकारकों से अधिक ऊर्जा वाले हैं, तो क्रिया पूर्ति के लिए अतिरिक्त ऊर्जा किसी रूप में देनी पड़ेगी। जो रासायनिक परिवर्तन हमारे विचाराधीन हैं, वे संगठनात्मक नहीं, वरन् पूर्णतः संयोगात्मक हैं। इन परिवर्तनों में आपसी संगति अथवा असंगति का आधार उनकी तल ऊर्जा को माना गया है। एक सी तल-ऊर्जा वाले पदार्थ आपस में आसानी से संगति कर लेते हैं, परन्तु यदि उनकी तल-ऊर्जा में अधिक अन्तर हो, तो वे अलग-अलग ही रहते हैं। कम तल-ऊर्जा वाले पदार्थ (सामान्यतः कार्बनिक पदार्थ) पानी से, जिसके अणुओं पर तल-ऊर्जा अधिक होती है, संयोग करने में असमर्थ होते हैं। इन परिस्थितियों में संयोगीकरण के लिए वे रासायनिक पदार्थ अथवा कारक जो तल-ऊर्जा के अन्तराल को कम करते हैं, बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इन रासायनिक पदार्थों को "तल-सक्रिय यौगिक" के नाम से जाना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह सतह के तनाव को, जो दो असंगत पदार्थों में उत्पन्न हो जाता है, कम करते हैं।

तल-सक्रिय यौगिक (सर्फेस एक्टिव एजेंट)

संगठनात्मक आधार पर ये यौगिक तीन प्रकार के होते हैं; धनायन- प्रधान, ऋणायन-प्रधान तथा निरायनीय। यह नामकरण यौगिक के अणु के विशिष्ट भाग की सक्रियता के अनुसार दिया गया है, जैसे अणु का सक्रिय घटक, जो बड़ा भाग होता है, धनावेशीय है अथवा ऋणावेशीय। निरायनीय यौगिक के अणुओं पर दोनों प्रकार का आवेश होता है, परन्तु वह इसकी पृष्ठ-भूमि पर थोड़ा-थोड़ा इस प्रकार बँटा हुआ होता है कि किसी आवेश की प्रधानता नहीं मानी जाती। तल-सक्रिय यौगिक के अणुओं की विशेषता इसी आवेशीय-निरावेशीय प्रकृति के कारण ही होती है। इसके अणुओं की यह विरूपता ही है जिसके कारण दो असंगत पदार्थों के अणुओं के बीच अन्तः पृष्ठ पर आकर यह मध्यस्थों की तरह दोनों को पास लाने में सफल हो जाता है, अथवा यह कहा जाए कि यह रसायन उन दोनों में एक जोड़ लगा देता है। अपनी इस विचित्र क्षमता के कारण औद्योगिक दृष्टि से ये पदार्थ बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनका उपयोग वैटिंग (सतह तक पहुँचना), डिस्पर्शन

(कणीकरण अथवा बारीक कणों को अलग-अलग करना) तथा एमल्सीफिकेशन (एमल्शन बनाना) के लिए किया जा रहा है।

वैटिंग वह कार्य है जिसमें एक तरल पदार्थ रासायनिक दृष्टि से भिन्न ठोस पदार्थ के कणों की सतह तक पहुँचाया जाता है। द्रव यदि पानी हो, तो उसे जल-असंगत (जलविरागी) ठोस वस्तुओं के कणों की सतह तक, और इसी प्रकार, तेल और वसा जैसे कार्बन से व्युत्पन्न द्रवों को खनिज अथवा अकार्बनिक ठोस कणों की सतह तक पहुँचाना वैटिंग कहलाता है। पेंट उद्योग तथा कपड़े रंगने के उद्योग वैटिंग कारकों का अत्यधिक इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, आप देखेंगे कि चूने पर आधारित लाईमवाश के लिए अब ऐसे बने बनाये रंग मिलते हैं, जो वैटिंग एजेंट से उपचारित होने के कारण पानी में अपने आप मिल जाते हैं।

डिस्पर्शन लगभग सभी ऐसे ठोस पदार्थों में किया जाता है, जिनको बहुत बारीक पाउडर के रूप में प्रयुक्त करना होता है। ऐसा न किया जाये, तो पड़े-पड़े बारीक कण मिलकर मोटे कण बना देते हैं और उनकी औद्योगिक उपयोगिता जो बारीकी के कारण होती है, नष्ट हो जाती है।

एमल्शनों का प्रयोग आजकल काफी बढ़ गया है। पेंट के अतिरिक्त, रेज़िनों का एमल्शन सस्ते और सुदृढ़ बंधक पदार्थ के रूप में विभिन्न कार्यों के लिए होता है, जैसे "फैविकोल", पॉलीविनाईल ऐसीटेट, रेज़िन का जलीय एमल्शन होता है।

इन रसायनों का उपयोग बहुधा पानी अथवा किसी और घोलक के साथ करना पड़ता है और इस दृष्टि से ये पदार्थ पानी में घुलनशील अथवा अघुलनशील हो सकते हैं, परन्तु इनका घोल पानी अथवा और किसी घोलक में एक रूप नहीं होता। सामान्य साबुन इन पदार्थों का एक अति विख्यात उदाहरण है जो रासायनिक संगठन के अनुसार वसा अम्लों का सोडियम लवण होता है, जैसे सोडियम स्टीयरेट। स्टीयरेट भाग चूँकि ऋणावेशी है, इसलिए यह पदार्थ ऋणायन-प्रधान है। साबुनों के अतिरिक्त, सलफेटीकृत तेल, वसा, एलकोहल तथा पैराफिनें, एल्काईल एराईल सल्फोनेट इत्यादि भी ऐसे यौगिक हैं। नाइट्रोजन के अमोनियाई लवणों से बनाये गये कार्बनिक यौगिक धनायनीय तथा पॉलीईथर, वसा अम्ल, एस्टर तथा एमाईड निरायनीय तल-सक्रिय यौगिकों में आते हैं। इन यौगिकों की काफी कम मात्रा (लगभग 0-1%) उत्पादन मिश्रण में काफी रहती है।

औद्योगिक इस्तेमाल

ये रसायन अपने विशिष्ट असंतुलित आवेशीय संगठन के कारण दो भिन्न प्रकार की तल-ऊर्जा वाले अणुओं के बीच में आकर वैटिंग, डिस्पर्शन, एमल्सीफिकेशन इत्यादि की प्रक्रियाओं के द्वारा योग वाले ऐसे नये उत्पाद बनाते हैं, जो औद्योगिक दृष्टि से बड़े उपयोगी होते हैं। ऐसे सारे पदार्थों का विस्तृत वर्णन तो बहुत बड़ा हो जायेगा, परन्तु संक्षेप में निम्नलिखित उपयोग बताये जा सकते हैं :

1. सूती तथा कृत्रिम कपड़े, चमड़े तथा ऊन की सफाई, रंगाई, रूप की स्थिरता तथा उनकी उपयोगिता को बढ़ाना,
2. प्लास्टिक तथा रबड़ में उपयोगी गुण लाना तथा इनसे फोम की वस्तुएं इत्यादि बनाना, जैसे फोम के गद्दे इत्यादि,
3. सभी प्रकार के सज्जा-पदार्थ, जैसे शैम्पू, साबुन, क्रीम, पाउडर इत्यादि बनाने में,
4. नये-नये बंधक तथा चिपकाने वाले सस्ते पदार्थ एमल्शन के रूप में तैयार करना, जैसे फैविकोल, पेंट, छपाई के रंग तथा रोशनाइयाँ बनाना,
5. विभिन्न पदार्थों को जल-अवरोधक बनाने में,
6. घर की लगभग सभी प्रकार की सफाइयों के पदार्थ अथवा डिटर्जेंट इत्यादि,
7. चूना पुताई लाईमवाश के बने-बनाये रंग तैयार करने में,
8. खाने की तथा कीटाणुनाशक अनेक दवाइयों के मिश्रण बनाना,
9. कागज पर सतही उपचार लगाना तथा पल्प बनाना,
10. धातु प्लेटिंग तथा धातु काटने में सहायता करने के पदार्थ बनाने में,
11. झाग उत्पन्न तथा निराकरण करने वाले पदार्थ बनाना,
12. रबड़ तथा प्लास्टिक की वस्तुओं को मोल्ड से निकालने में,
13. धातु का टांका लगाने में सहायक पदार्थ बनाना,
14. आग बुझाने के उपचार वाले रसायनों के निर्माण में,
15. निर्माण उद्योग में नींव बनाने में, भू-स्खलन रोकने में,
16. सीमेंट कंक्रीट में सहायक गुण पैदा करना, जैसे

(शेष भाग 52 पर)

कुवर्ण से वाष्प निक्षेपण द्वारा सुवर्ण

कृष्ण कुमार सिन्हा
प्रबन्ध निदेशक, मिश्र धातु निगम,
कांचनबाग, हैदराबाद - 500 258

यद्यपि वान आर्कल एवं डि बीर के प्रयोगों ने आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व, यह साबित कर दिखाया था कि सीधे वाष्प अवस्था से कुछ खास धातुओं का अपचयन संभव है, जैसे कि टंगस्टन हेक्साफ्लोराइड से टंगस्टन धातु का अपचयन, फिर भी निक्षेपण की तकनीकों में पिछले बीस-पंचीस वर्षों में ही सुनियोजित ढंग से प्रगति हुई है। इलेक्ट्रोनिक्स, आप्टिक्स, विघर्षण-अवरोध एवं सजावट के क्षेत्रों में वाष्प निक्षेपण की तकनीकों का उपयोग इतना बढ़ा है कि इसने एक उद्योग का स्वरूप ले लिया है। हवा की अनुपस्थिति में अल्युमिनयम एवं क्रोमियम जैसी धातुओं का ऊष्मा के उपयोग से वाष्पीकरण एवं प्लास्टिक पर्तों पर निक्षेपण की विधि ने तो ऐसे उद्योग को जन्म दिया है जिसने सोने और चांदी की "जरी" को म्यूजियम की वस्तु बना दिया है।

वाष्पीय अभिकारक गर्म अधोस्तर पर रासायनिक या भौतिक प्रक्रियाओं के वशीभूत हो पतली पर्तों का निर्माण करते हैं। साधारणतः वाष्प निक्षेपण को दो विभागों में बांटा गया है, "सी.वी.डी."(CVD) एवं "पी.वी.डी."(PVD), अर्थात् रासायनिक एवं भौतिक वाष्प निक्षेपण। "सी.वी.डी." तकनीक में वाष्पशील यौगिकों का प्रयोग उन तत्वों का वहन करने के लिए होता है, जो स्वयं बिल्कुल ही वाष्पशील नहीं हैं, जैसे कि टाइटेनियम या सिलिकोन को वहन करने के लिए उनके टेट्राक्लोराइड या हाइड्रोक्लोराइड का उपयोग। धातुओं तथा उनके इच्छित यौगिकों का निक्षेपण वांछित अधोस्तरों पर कराने के लिए ऊंचे तापमान एवं रासायनिक प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है।

भौतिक निक्षेपण की प्रक्रिया, "पी.वी.डी." में मूलधातु जैसे टाइटेनियम मेटल का प्रयोग होता है। वायुविहीन कक्ष में धातु के अणुओं को इलेक्ट्रोन किरण या प्लास्मा से उत्तेजित कर, वांछित अधोस्तर की ओर चुम्बकीय या विद्युत क्षेत्र के माध्यम से ले जाया जाता है। अभिकारक गैस को भी इसी क्षेत्र से गुजरना होता है। धातु के अणु और गैस के अणु विद्युत क्षेत्र के प्रभाव में कम तापमान पर ही आपस में टकराव के द्वारा यौगिक का निर्माण कर लेते हैं और वे वांछित सतह पर विद्युत क्षेत्र के वशीभूत जमा हो जाते है। इस विधि के कई स्वरूप हैं जिनका मूलभूत उद्देश्य एक ही है, कम तापमान पर यौगिक का जमाव।

"सी.वी.डी." पद्धति में धातु का वाष्पीय यौगिक के रूप में प्रयोग होता है, जबकि "पी.वी.डी." पद्धति में धातु का मूलभूत रूप में। पहले में रासायनिक प्रक्रिया साधारण तथा ऊंचे तापमान पर होती है जिसको आगे बढ़ाने में ऊष्मा गतिकी और सूक्ष्म गतिकी के सिद्धान्तों का सहारा लिया जाता है, जब कि दूसरे में बहुत ही कम दबाव पर वाष्पीकरण, आयनन और विद्युत क्षेत्र का। ऊंचे तापमान पर प्रक्रिया कराने से "सी.वी.डी." पद्धति में प्रायः वांछित अधोस्तर से आसंजन अच्छा होता है और निक्षेपण की प्रकृति को भी बदला जा सकता है, जैसे मणिभीय या अमणिभीय परत।

"सी.वी.डी." प्रक्रिया में यद्यपि तीन पृथक चरण होते हैं, पर कोई आवश्यक नहीं कि तीनों चरणों का प्रावधान अलग-अलग किया जाय। "पी.वी.डी." की भांति एक ही कक्ष में वाष्पशील यौगिक का निर्माण, वांछित सतह तक उसका वहन और रासायनिक क्रिया द्वारा यौगिक का स्वस्थाने निक्षेपण एक-ही साथ कराया जा सकता है जैसा कि "पैक प्रोसेस" द्वारा अल्युमिनाजन, क्रोमाइजन या टाइटेनाइजन में होता है। इस पैक प्रोसेस में स्रोत वाहक और प्रतिरूप (सोर्स, कैरियर और स्पेसिमेन) के प्रतिनिधि अल्युमिनियम पाउडर, अमोनियम क्लोराइड और स्टील या निकेल का पुर्जा, तीनों को एक-ही साथ एक बर्तन में पैक कर दिया जाता है। इसे गर्म करने से HCl की उत्पत्ति होती है जो अल्युमिनियम से मिल कर पहले मोनो-क्लोराइड बनाता है। वाष्पशील होने के कारण AlCl रिसकर स्टील या निकेल के पुर्जे की सतह तक पहुंचता है जहाँ उस सतह पर उच्च

तापमान के प्रभाव से धातु के अल्युमिनाइड का निर्माण होता है और साथ ही ट्राईक्लोराइड भी बनता है जो सौभाग्य से वाष्पशील होने के कारण पुनःअल्युमिनियम पाउडर से प्रक्रिया करके मोनोक्लोराइड बनाता है और इस तरह निक्षेपण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

"सी.डी.वी." या "पी.वी.डी." तरीकों से न केवल उन धातुओं या यौगिकों को जमाया जा सकता है जिनका द्रवणांक बहुत ऊंचा है अथवा जिनका विद्युतलेपन नहीं हो सकता, बल्कि ऐसे रूप भी बनाये जा सकते हैं जो दूसरे किसी तरीके से नहीं बन सकते, जैसे पायरोलिटिक ग्रेफाइट।

"सी.वी.डी." से बनी पर्त की रचना नाभिकन (न्यूक्लिएशन) एवं वृद्धि (ग्रोथ) की क्रियाविधियों पर निर्भर करती है। साधारणत: ऐसी सतहें घनी, सुनियोजित एवं छिद्ररहित होती हैं। इस विधि से इक्वीएक्स्ड, कौलम्नर या एपिटेक्सियल पर्त की वृद्धि की जा सकती है। जहाँ तक नाभिकन का सवाल है, वह यौगिक की ऊष्मागतिकी, वांछित सतह पर अधिशोषण तथा विसरण (डिफ्यूजन) और सतह की अनियमितता पर निर्भर करता है। इन तहों की वृद्धि प्रक्रिया की गतिकी और दर-नियंत्रण प्राचलों पर निर्भर करती है। संभवत या इन चरणों को इस क्रम में रखा जा सकता है; (क) अभिकारकों का वांछित अधोस्तर तक वहन, (ख) अधोस्तर पर अभिकारकों का अधिशोषण, (ग) अधोस्तर पर रासायनिक अभिक्रिया और अधोस्तर के अणुओं से आबन्धन और तत्पश्चात विसरण, (घ) अधोस्तर से उत्पादित गैस का विशोषण, और (च) इन गैस अणुओं का अधोस्तर से परिवहन। इन सारी प्रक्रियाओं में तापमान, दबाव और अभिकारकों के सांद्रण का महत्वपूर्ण योगदान होता है जिसे इच्छानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इस तरह इन सारी प्रक्रियाओं के विशिष्ट अध्ययन के लिए वाष्प निक्षेपण एक सुविधाजनक प्रक्रम है।

"सी.वी.डी." पद्धति की बारीकियों को समझते हुए आज न केवल शुद्ध तत्व, जैसे टंगस्टन या टैन्टालम जमाये जा रहे हैं, बल्कि TiC, Al_2O_3, BN, SiC, Si_3N_4 और पायरोलिटिक ग्रेफाइट जैसे यौगिक वांछित अधोस्तरों पर जमाये जा रहे हैं जिनका निक्षेपण निवांत वाष्पन अथवा विद्युत लेपन से संभव नहीं है। सिलिकोन, गैलियम आर्सेनाइड तथा जर्मेनियम की एपिटैक्सियल परतों की संरचना रोपणक अणुओं (डोपेन्ट्स) के साथ की जा रही है। "सी.वी.डी." तरीके में चूँकि निक्षेपण गैसीय अवस्था में होता है, तह की जमावट प्रतिरुप के चारों तरफ, यहां तक कि छिद्रों में भी एकसमान होती है, जबकि "पी.वी.डी.", जो बहुधा वाष्पीकरण, आयन लेप और कण क्षेपण तरीके से होती है, चतुर्दिक नहीं हो पाती। TiN का निक्षेपण सी.वी.डी. और पी.वी.डी., दोनों पद्धतियों से किया जा रहा है। "सी.वी.डी." के उपयोग के कुछ उदाहरण सारणी-1 में दर्शाये गये हैं।

सारणी-1. वाष्प निक्षेपण के कुछ उपयोग

उद्देश्य	उपयोग का क्षेत्र	तत्व या यौगिक
विघर्षण-अवरोध,	तक्षण(मशीनन) हेतु कराबाइड टूल्स, धातु संरूपण हेतु फौलाद के सांचे और पंच, टेक्सटाइल के थ्रेड गाइड	
संक्षारण अवरोध	केमिकल प्लान्ट के पुर्जे, द्रव सोडियम से अवरोध	Ta, W
प्रकाशीय कांच	इन्फ्रारेड केमरा	ZnS, ZnSe
इलोक्ट्रोनिक वस्तुए	एपिटैक्सियल विधि से जमायी सतहें	GaAs, Si, Ge
सजावट	नकली गहने	TiN, TiC
उच्चताप सहन	गैस टर्बाइन के पुर्जे	Si_3N_4

द्रुत गति तक्षण (मशीनन) तथा उपयोग में आयु-वृद्धि के लिए TiC और TiN का निक्षेपण "सी.वी.डी." तरीके से आज इतना प्रचलित है कि कारबाइड कटिंग टूल्स का अधिकांश आज निक्षेपित (कोटेड) रूप में ही व्यवहृत होता है। इस पद्धति के विकास का लाभ अब फौलाद के टूल्स की आयु बढ़ाने में भी मिलने लागा हैं। TiC या TiN की 4 से 10 माइक्रोन मोटी परत मेटल फोर्मिंग डाइज़ और टूल्स की आयु को, जो अधिकतर M-2, D-2 या T-15 स्टील से बनी होती हैं, चार से दस गुना बढ़ा देती है। इसका कारण है इस परत का अधोस्तर

(सबस्ट्रेट) की सतह से मजबूत आसंजन, परत का कड़ापन, तथा परत का घना और छिद्र रहित होना। TiN की परत ज्यादा चिकनी होती है और उसका घर्षण गुणांक कम है, फलतः फौलाद के टूल्स के ऊपर इसकी कोटिंग का प्रचार बढ़ रहा है। पालिश करने पर TiN सोने की तरह चमकने लगता है जब कि TiC का रंग गहरा भूरा होता हैं। टाइटेनियम के कार्बाइड या नाइट्राइड की सतह की गुणवत्ता का अधोस्तर की सतह की तैयारी के अलावा, उसके कार्बन अणुओं की सांद्रता और वातावरण में आक्सीजन के अणुओं की उपस्थिति से गहरा सम्बन्ध हैं। इन सारी बातों को समझते हुए इस प्रकार के कई उपस्कर आज उपलब्ध हैं जिन से व्यावसायिक स्तर पर फौलाद या कार्बाइड के पुर्जों पर TiC या TiN का लेपन इस देश में भी किया जा रहा है। चूंकि "सी.वी.डी" पद्धति अपेक्षाकृत उच्च तापमान पर होती है, TiN की परत का रंग थोड़ा मटमैला निकलता है जिसे सोने जैसा चमकीला बनाने के लिए पालिश करने की जरूरत पड़ती है। "पी.वी.डी." के "आयन आसंजित" तरीके में तापमान कम होने की वजह से TiN का रंग चमकीला निकलता है, जिससे इस विधि का सजावट (आर्टिफिशियल ज्वेलरी) के लिए भी उपयोग किया जा सकता है।

जहां तक फौलाद के बने निक्षेपण औजारों का सवाल है, जैसे हॉब्स, गियर-शेप-कटर्स, एन्डमिल कटर्स, ड्रिल्स, टैप्स, ब्रोचेस इत्यादि, इन सबकी कम आयु होने के कारण हैं; (1) वर्क पीस से घर्षण एवं घिसाव, (2) उच्च तापमान पर वर्कपीस से विसरण जनित रासायनिक क्रिया, (3) इसके फलस्वरूप औजारों के कड़ेपन में कमी, (4) उच्च तापमान और दबाव के चलते, वर्क पीस से 'कोल्ड वेल्डिंग' और 'गालिंग', जिसके चलते तेजी से मशीनिंग या फौर्मिन्ग नहीं की जा सकती, (5) उच्च तापमान पर आक्सीकरण और प्लास्टिक विरूपण। इन सबके या किसी एक के भी चलते हार्डेन्ड स्टील के औजारों की आयु कम हो जाती है जिसकी वजह से उन्हें "बैस मेटल" की संज्ञा दी जाती है। वाष्प निक्षेपण से बनी TiC या TiN की पतली परतों ने सारे प्रतिकूल कारणों की मात्रा घटाकर न केवल उनकी आयु बढ़ा दी है वरन् ज्यादा गति पर काम करने की शक्ति देकर उनकी कार्यक्षमता भी कई गुना बढ़ा दी है। "बैस मेटल" के गुण और आयु बढ़ाने के लिए नाइट्राइडन अथवा विद्युत लेपन जैसे कई प्रयास किये गये हैं, पर वाष्प निक्षेपण की तकनीक ने बेस मेटल को सचमुच "नोबल मेटल" बना कर प्राचीन "केमिस्ट्स" के दिवास्वप्न को साकार कर दिखाया है।

(पृष्ठ 49 का शेष भाग)

कार्यक्षमता में सुधार, सामर्थ्य बढ़ाना, जल अवरोधकता पैदा करना, फोम वाली हल्की कंक्रीट बनाना इत्यादि,

17. तारकोल अथवा रेज़िन कंक्रीट बनाना, जो सड़क तथा फर्श निर्माण में काम आती है।

इस सूची को पूर्ण नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि और भी काफी विशिष्ट प्रकार के उपयोग हैं जो यहां लिखे नहीं गये हैं। इसके अतिरिक्त, जो एक महत्वपूर्ण तथ्य इन रसायनों के बारे में जानना चाहिए, वह यह है कि कार्य पूरा होने पर यह रसायन बहुधा अपने आप नष्ट हो जाते हैं क्योंकि इनके अधिकतर उपयोग अल्पकालिक होते हैं।

तल-सक्रिय यौगिकों के उदाहरण

ऋणायनीय : सोडियम लारइल सल्फेट, अमोनियम लारइल सल्फेट, डायोक्टाइल सोडियम सल्फोसक्सीनेट, सोडियम स्टीयरेट, कैलशियम औलिएट, एल्काइल एराइल सल्फोनेट, एल्केन सल्फोनेट, ट्राई ईथलोलामीन लाराइल सल्फेट।

धनायनीय : एल्काइल डायमिथाइल बेंजाइल अमोनियम क्लोराइड, सेटाइल ट्रायमिथाइल बेंजाइल अमोनियम क्लोराइड, एल्काइल पीरिडीनियम क्लोराइड, एल्काइल स्टेराइल डायमिथाइल बेंजाइल अमोनियम क्लोराइड।

निरायनीय : ग्लिसरोल मोनोस्टीयरेट, ब्यूटाइल स्टीयरेट, सारबीटान मोनोलारेट, पाली आक्सी ईथालीन सारबीटान मोनोपामीटेट, डाइटर्शरी ब्यूटाइल फेराक्रीसोल, पाली ग्लाईकोल ईथर, एल्काइलएराइल पाली ईथर, एल्कानोमाईड।

प्राकृतिक रूप में उपलब्ध : प्रोटीन, एल्गीनेट, रोज़िन (बैरोज़ा), लकड़ी की रेज़िन, लेसिथिन, बैंटोनाइट(मिट्टी)।

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र समाचार

नई देहली के प्रगति मैदान में 14 नवम्बर से लेकर 25 नवम्बर, 1992 तक अंतराष्ट्रीय तकनीकी मेला TECHMART-92 लगा था। इस मेले का मुख्य ध्येय, विभिन्न छोटी और/या बड़ी इकाइयों (सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र की) द्वारा विकसित तकनीकों का प्रदर्शन था। इस प्रदर्शनी का आयोजन राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, यू नी डो (UNIDO), भारतीय व्यापार विकास संस्था (Indian Trade Promdtion Organisation) और उद्योग मंत्रालय द्वारा सम्मिलित रूप से किया गया था।

भा.प.अ. केन्द्र ने अपनी प्रदर्शनी में नाभिकीय अनुसंधान व विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत विकसित कई तकनीकों एवं उपकरणों का प्रदर्शन किया था, जिनमें अंधे लोगों के लिए पाठ्य-पुस्तकों को पढ़कर सुनाने वाला ब्रेली-तंत्र, अस्पतालों में प्रयुक्त हो सकने वाला सूचना-प्रबंधन तंत्र, निर्मित यांत्रिक घटकों के निरीक्षण हेतु पराश्रव्य-ध्वनि सी-स्केन प्रतिबिंब तंत्र, गैलियम-आर्सेनाइड लेजर डेटा संचारक (Communicator), उच्च सुरक्षात्मक इलेक्ट्रोनिकी ताले, फोल्डेबल सौर-ऊर्जा शुष्कक, फलों का परासरणिक (ओस्मोटिक) निर्जलीकरण, आक्सीजन मापक तथा ओजोन जनित्र आदि मुख्य थे।

काफी लोगों ने इनकों देखा व कई उद्योगियों ने भा.प.अ. केन्द्र में विकसित इन तकनीकों को अपनाने की जिज्ञासा दिखायी। परमाणु ऊर्जा के पैवेलियन को उसकी विकसित नूतन तकनीकों (आयतित तकनीकों के विस्थापन हेतु) के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया।

बधाईयाँ

डा. उमेश चंद्र मिश्र, अध्यक्ष प्रशिक्षण प्रभाग, भा.प.अ. केन्द्र को उनकी हिन्दी पुस्तक - ''परमाणु ऊर्जा के चमत्कार'' पर परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा स्थापित होमी भाभा पुरुस्कार प्रदान किया गया। पुस्तक का प्रकाशन NCERT ने वर्ष 1988 में किया था। पुस्तक की समीक्षा ''वैज्ञानिक'' (अंक -1पृष्ठ - 64 वर्ष - 22, जनवरी मार्च 1990) में की चुकी है।

तीसरी दुनियाँ की विज्ञान एकेडमी (TWAS) की कौन्सिल ने नवंबर 1992 में डा. चितरंजन भाटिया, निदेशक, जैव-आयुर्विज्ञान वर्ग भा.प.अ. केन्द्र को एकेडेमी का फैलो बनाया है। डा. भाटिया को मार्च 1, 1993 से जैव-तकनीकी विभाग (भारत-सरकार) का सचिव नियुक्त किया गया है।

वे हमारे केंद्र की हिंदी गति विधियों से निकटता से जुड़े रहे हैं। **डा. कैलाश चन्द्र भल्ला.**

शैक्षणिक कार्यक्रम

दिनांक 16 दिसम्बर, 1992 को हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा परमाणु ऊर्जा जूनियर कालेज की 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए भा.प.अ. केंद्र में एक शैक्षणिक भ्रमण का आयोजन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य उन्हें केंद्र की मुख्य गतिविधियों से अवगत कराना था। इसमें कुल 40 विद्यार्थियों एवं वहाँ के 6 अध्यापकों ने भाग लिया। इन्हें परमाणु ऊर्जा विभाग एवं केंद्र की गतिविधियों के बारे में बताया गया तथा उनकी शंकाओं का समाधान किया गया। ये सब लेसर, अप्सरा रिएक्टर, कंप्यूटर, पादप जैव प्रौद्योगिकी, भूकम्प विज्ञान, विकिरण मापन विधि, खाद्य पदार्थ किरणन एवं संसाधन प्रयोगशाला आदि ऐसे कई स्थानों पर गये जहाँ उन्हें संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा प्रदर्शित उपकरणों एवं इकाइयों के बारे में विस्तार पूर्वक बताया एवं समझाया गया। सभी स्थानों पर विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक विचार विमर्श में भाग लिया। इसके अतिरिक्त, एक दृश्यश्रव्य स्लाइड- शो भी आयोजित किया गया जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में रेडियो आइसोटोपों की उपयोगिताओं को बारे में बताया गया।

यह भ्रमण विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिए पर्याप्त ज्ञानवर्धक रहा।

- डा. राजेन्द्र स्वरूप एवं डा. विजय कुमार

टिप्पणी

लिथोट्रिप्सी

लिथोट्रिप्सी का अर्थ है आघात तरंगों से पेट के भीतर स्थित पथरी को चूर-चूर करना। लिथोट्रिप्टर उस कंप्यूटर चालित यंत्र का नाम है जो बिना शल्यक्रिया के पेट की पथरी को चूर्ण करके बाहर निकाल देता है।

इस मशीन की खोज ने पथरी रोग की चिकित्सा की परिपाटी ही बदल डाली है। गुर्दे की पथरी सरलता से निकल जाती है और शरीर के किसी अंग को कोई हानि नहीं होती है। यह चिकित्सा केवल 40 मिनट की है। इसमें न बेहोश करने की जरूरत है और न अस्पताल में ठहरने की आवश्यकता। यह विधि नितांत सुरक्षित है।

उच्च रक्तदाब, मधुमेह, हृदय संबन्धी बीमारियों वाले रोगियों का भी जिनकी चिकित्सा शल्य-क्रिया द्वारा संभव नहीं है, लिथोट्रिप्सी द्वारा इलाज हो सकता है। इस चिकित्सा में कोई साइड इफेक्ट भी नहीं होता है।

कैल्शियम आक्जेलेट, पोटैशियम फास्फेट, एक विशेष प्रकार की प्रोटीन, सिसटीन, यूरिक एसिड, मैग्नेशियम फास्फेट, अमोनियम फास्फेट आदि रासायनिक पदार्थों के गुर्दे, मूत्रनली या मूत्रथैली में जमा हो जाने से पथरी बनती है। 60 से 70% तक पथरियाँ कैल्शियम आक्जेलेट या पोटैशियम फास्फेट से बनती हैं और 90% पथरियाँ गुर्दे और आंतरिक मूत्रनली में पायी जाती हैं। भिन्न-भिन्न रसायनों की पथरियाँ अलग-अलग आकार की होती हैं, कुछ चिकनी, कुछ खुरदरी, तो कुछ काँटेदार।

उस समय पथरी बनने की संभावना अधिक रहती है जब प्रोटिअस और स्टेफलोकोकेस नामक जीवणु से बार-बार संक्रमण हो। भोजन में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक लेने से भी पथरी बनने की संभावना रहती है। आलसी जीवन व्यतीत करने से भी पथरी बनने लगती है। गुर्दे में रक्त के साथ बहुत-से तत्व, जैसे सिसटीन, यूरिक एसिड आदि आते हैं। यदि इन तत्वों की मात्रा जरूरत से अधिक हुई, तो ये मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। यदि किन्हीं कारणों से ये रासायनिक पदार्थ इतनी मात्रा में गुर्दे में आते हैं कि सोख लिये जाने के बाद गुर्दे इनको शरीर से बाहर नहीं निकाल पाते, तो ये तत्व गुर्दे में जमा होने लगते हैं, विशेषतया गुर्दे के उस भाग में जो क्षतिग्रस्त हो या संक्रमण का शिकार हो। एक बार यदि जमाव की क्रिया शुरु हो गयी, तो फिर पर्त-दर-पर्त बनती जाती है जिसका परिणाम पथरी या पथरियों के रूप में सामने आता है। इन तत्वों का संतुलन या तो असंतुलित आहार के कारण बिगड़ता है अथवा कुछ हारमोन ग्रन्थियों, जैसे पेराथायराइड की बीमारी के कारण कैल्शियम, हड्डियों से अधिक मात्रा में रिसता है और रक्त में इसका स्तर बढ़ जाता है।

गठिया या जोड़ों की बीमारी में यूरिक अम्ल शरीर में अत्यधिक मात्रा में बनना शुरू हो जाता है, जिसका जमाव पथरी के रूप में हो जाता है।

क्षार और अम्ल का एक विशेष संतुलन मूत्र में रहता है। जब मूत्र में अधिक अम्ल हो जाये, तो आक्जेलेट व सिसटीन नामक तत्व जमना शुरु हो जाता है। इसी तरह अत्यधिक क्षार की स्थिति में फास्फेट जमना शुरु हो जाता है। जन्मजात कारणों से यदि व्यक्ति के गुर्दे का विकास सामान्य नहीं होता है, तो इस तरह के गुर्दे में संक्रमण और उसके पथरी रोग से पीड़ित होने की संभावना स्वस्थ गुर्दे की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

30 से 50 वर्ष की आयु में पथरी बनने की संभावना अधिक रहती है। अतः, इस आयु-वर्ग के व्यक्तियों को अपना आहार संतुलित रखना चाहिए जिसमें प्रोटीन की मात्रा आवश्यकतानुसार हो।

लिथोट्रिप्सी चिकित्सा-प्रणाली को म्युनिख(जर्मनी) की डोर्नियर मेडिकल टेक्नोलॉजी कम्पनी द्वारा विकसित किया गया जिसने गुर्दे की पथरी हेतु लिथोट्रिप्टर तो खोजा ही, अब पित्ताशय की पथरी के इलाज के लिए, जिससे लाखों लोग प्रतिवर्ष पीड़ित होते हैं, 'गॉल लिथोट्रिप्टर' बनाने में भी सफलता प्राप्त की।

इस मशीन द्वारा इलाज करने के लिए सर्वप्रथम एक्स किरणों से पथरी का पता लगाया जाता है कि वह

कहाँ स्थित है। इसके बाद, शॉक वेव गन (आघात तरंग प्रक्षेपक) से उच्च आवृति की ध्वनि-तरंगें इस प्रकार छोड़ी जाती हैं कि वे सीधी पथरी पर केन्द्रित हों। तरंगों की आवृति एवं दिशा आदि इसमें लगे कंप्यूटर की मदद से सुनिश्चत की जाती है। तीस से पचास मिनट तक लगातार तरंगें छोड़े जाने से किसी भी आकार की गुर्दे की पथरी चूर-चूर हो जाती है जो बाद में धीरे-धीरे मूत्र-मार्ग से निकल जाती है।

पित्ताशय लिथोट्रिप्टर में पथरी का पता पराध्वनिक (अल्ट्रासोनिक) तरंगों द्वारा भी लगाया जाता है। यह विधि एक्स-रे की अपेक्षा अधिक सफल है।

इस मशीन से ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे पत्थर तोड़ते समय हथौड़े से निकलती है। इस क्रिया में स्थानीय अनेस्थिसिया देने की विधि प्रयोग में लायी जाती है जिससे रोगी को दर्द अनुभव न हो।

- डा. वासुदेव प्रसाद यादव
98, अशोक नगर, आगरा - 282002

विश्व का सबसे मीठा पदार्थ

"तालीम प्रोटीन" विश्व का सबसे मीठा पदार्थ है जो अफ्रीका के "थामाटोकोकम डेनीएलीकेबेरी" नामक पौधे के फल से बनाया गया है। यह चीनी से पाँच हजार गुना अधिक मीठा होता है। तालीम प्रोटीन के गुण व दोषों का पता लगाने के लिए मैसूर स्थित केन्द्रीय खाद्य तथा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक इसका विस्तृत अध्ययन कर रहे हैं।

संस्थान के जीव भौतिकी विभाग तथा रसायन के प्रमुख, डा.वी. प्रकाश ने जो प्रोटीन तथा मिठास का अतिरिक्त विकल्प खोजने में कार्यरत हैं, बताया है कि इस अत्यधिक मीठे पदार्थ की मिठास चीनी से बिल्कुल भिन्न है। उन्होंने यह भी बताया है कि "तालीम प्रोटीन" का स्वाद कुछ क्षण बाद प्रारम्भ होता है लेकिन अधिक समय तक रहता है। वैज्ञानिकों का यह भी कथन है कि इस पदार्थ की थोड़ी-सी मात्रा किसी अन्य पदार्थ में मिलाने से वह पदार्थ स्वादिष्ट और सुगंधित बन जाता है। यदि इस पदार्थ को पिपरमिंट और मेंथोल जैसे मीठे पदार्थों में मिला दिया जाए, तो यह न केवल उनमें सुगन्ध तथा स्वाद भर देगा, बल्कि उनको एक अवर्णनीय स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बना देगा।

साधारण रूप से तालीम प्रोटीन में प्रोटीन के ऊष्मीय गुण (4.1 किलो केलरी/कि.ग्रा.) उपलब्ध हैं। चूंकि यह चीनी से 5,000 गुना अधिक मीठा होता है, इसलिए इसकी मात्रा इतनी कम मिलायी जाती है कि पदार्थ पूरी तरह ऊष्मीय रहता है। उदाहरणार्थ, तालीम प्रोटीन से बनी एक च्युविंगम में केवल 0.0012 किलो केलोरी (ऊष्मा) होती है जबकि चीनी से निर्मित च्युविंगम में इससे एक मीठे फल के समान 7 गुना अधिक होती है।

इस पदार्थ का प्रयोग मधुमेह के रोगियों के लिए बनाये जाने वाले पदार्थों में भी किया जा सकता है, जबकि मधुमेह के रोगियों के लिए चीनी वर्जित है। अमेरिका में किये गये अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि तालीम प्रोटीन के प्रयोग से कैंसर होने की सम्भावना नहीं होती है, इसलिए ब्रिटेन, जापान तथा अमेरिका में इसे च्युविंगम, पेयों एवं खाद्य पदार्थों व पशुओं के भोज्य पदार्थों में मिलाने की अनुमति दे दी गयी है।

डा. प्रकाश ने यह भी बताया है कि इस समय चीनी का विकल्प खाद्य प्रौद्यगिकी के सबसे अधिक आकर्षक पहलुओं में से एक है। अभी तक चीनी के कितने ही-विकल्प सामने आये, किन्तु वे सब कसौटी पर खरे नहीं उतरे, इसलिए उन्हें छोड़ देना पड़ा। अभी तक ऐसा कोई मीठा पदार्थ नहीं मिला है जिसे भोजन के लिए आदर्श ठहराया जा सके, इसलिए इसकी खोज देश के बाहर भी की गयी। इस खोज के अंतर्गत, तालीम एक अच्छा मीठा प्रोटीन सम्मुख आया है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण आशा है कि यह शीघ्र ही भारत के घरों में पहुँच जाएगा।

- शाहआलम सिद्दिका
रेस्ट हाउस नं.-15,
बिछिया रेलवे कालोनी,
गोरखपुर - 273 012

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एल्यूमिनियम

वर्ष 1970 में पश्चिम के डाक्टरों ने पाया कि गुर्दे की बीमारी के मरीज डायलिसिस के बाद, पहले तो

बेहद कमजोरी अनुभव करने लगे और फिर उनके मस्तिष्क का संतुलन भी गड़बड़ाने लगा। ये सब उस पानी का परिणाम था, जो डायलिसिस के लिए उपयोग में लाया गया था। इसका कारण था एल्यूमिनियम, जो इस पानी में सामान्य से कहीं अधिक मात्रा में था।

कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि एल्यूमिनियम की अधिकता से दिमागी कमजोरी, असंतुलन तथा अल्सीमर रोग हो सकते हैं। श्रीलंका और इग्लैंड में किये गये दो अलग-अलग अध्ययनों से अब यह निश्चित हो गया है कि एल्यूमिनियम के बर्तनों में भोजन बनाने से उसमें एल्यूमिनियम के रंच घुल जाते हैं। चाय में तो एल्यूमिनियम की काफी मात्रा घुल जाती है।

श्रीलंका के वैज्ञानिकों के अनुसार, फ्लोराइड युक्त पानी को एल्यूमीनियम के बर्तन में उबालने पर पानी में काफी मात्रा में एल्यूमिनियम घुल जाता है। उस पानी को जिसमें फ्लोराइड की मात्रा एक भाग प्रति दस लाख भाग तक हो, एल्यूमिनियम के बर्तन में उबालने से उसमें 220 भाग प्रति दस लाख भाग तक एल्यूमिनियम घुल सकता है। यदि फ्लोराइड युक्त पानी को काफी देर तक एल्युमिनियम के बर्तन में उबाला जाये, तो पानी में 600 भाग प्रति दस लाख भाग तक भी एल्यूमिनियम घुल सकता है।

विशेषज्ञों का कहना है कि यह धातु अत्यंत क्रियाशील होती है और आक्सीजन से क्रिया करके एल्यूमिनियम ऑक्साइड बनाती है जिसकी परत एल्यूमिनियम के बर्तनों की सतह पर रहती है। यदि आप इन बर्तनों में कोई अम्लीय खाद्य पदार्थ गरम करें, तो ये बर्तनों पर जमी ऑक्साइड की परतों से क्रिया करके खाद्य पदार्थों में घुल जाते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक होते हैं।

एल्यूमिनियम के बर्तनों में बनाये गये विटामिन युक्त खाद्य पदार्थ को खाने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होता है। अध्ययन से यह भी पता चला है कि शरीर के कुछ एंजाइम्स(खाद्य पदार्थों को पचाने में सहायक द्रव्य) भी इस धातु से प्रभावित हो जाते है जिससे डायरिया का भय बना रहता है।

उक्त निष्कर्ष हमारे लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे देश में हर घर में एल्यूमिनियम के बर्तन, विशेषकर गरीबी में पल रहे लोगों के पास जरूर दिखायी देते हैं। चूंकि ये सस्ते होते हैं और यह धातु गर्म भी जल्दी हो जाती है, इसलिए इनमें ईधन कम लगता है। इसके अतिरिक्त, भारत के 13 राज्यों के पानी में फ्लोराइड का स्तर काफी अधिक है। आंध्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान में फ्लोराइड का स्तर दो भाग से लेकर 38 भाग प्रति दस लाख भाग के बीच में है।

विशेषज्ञों का मत है कि उच्च एल्यूमिनियम युक्त भोजन या चाय पीने से मस्तिष्क की कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं और इनमें डेमेंटिया नामक रोग हो सकता है। इस रोग में मनुष्य अपनी स्मरण शक्ति खो देता है। उसकी निर्णय लेने की क्षमता खत्म हो जाती है तथा उसकी सोचने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। शरीर में इसकी अधिकता खून की कमी, हड्डियों के विकार और दिल की बीमारी जैसी समस्याएं पैदा करती है।

यह भी पाया गया है कि एल्यूमिनियम तंत्रिकाओं को हानि पहुँचाता है और इससे मस्तिष्क का रोग 'एल्जीमेर' हो सकता है जिसमें विचार शक्ति का शीघ्रता से ह्रास हो जाता है।

यद्यपि विशेषज्ञों को अभी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है कि एल्यूमिनियम किस प्रकार मस्तिष्क को प्रभावित करता है, पर उनका विश्वास है कि शरीर के अंदर पहुंचने के पश्चात, यह धातु ऐसे लवणों में परिवर्तित हो जाती है जो मस्तिष्क के भीतर रसायनों के संचरण में बाधा पहुंचाते हैं।

हमारे केक और बिस्किट भी इससे अछूते नहीं हैं। उनमें भी सोडियम अल्यूमीनियम फॉस्फेट मिलाया जाता है।

आमतौर पर हमारे शरीर में पहुँचने वाले एल्यूमिनियम का 75-95% शरीर से बाहर निकल जाता है, लेकिन यह तभी तक संभव है, जब एल्यूमीनियम की 8 से 9 मि.ग्रा. मात्रा ही हमारे पेट में पहुँच रही हो। भारी मात्रा में पहुँचने वाला एल्यूमिनियम शरीर को काफी क्षति पहुँचा सकता है। ये हड्डियों तथा फेफड़ों में जमा होने लगता

है और उन्हें कमजोर बनाता है। इसकी बढ़ी हुई मात्रा दिल को क्षतिग्रस्त कर सकती है, क्योंकि यह शरीर की विद्युतीय गतिविधियों में दखलअंदाजी करती है। गुर्दे के मरीजों और वृद्धों को तो इससे बेहद सावधान रहना चाहिए।

जिन स्थानों में पानी को साफ व शुद्ध करने के लिए फिटकरी और चूने का प्रयोग होता है, वहां भी पानी के साथ इसके शरीर में जाने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है।

- **जगमोहन सिंह रौतेला**
सत्यनारायण मंदिर,
देहरादून - 249204

बायोटेक टमाटर

यद्यपि सम्पूर्ण विश्व के रसोईघरों में टमाटर (वानस्पतिक नाम, लाइकोपरसीकान इस्कुलेंटम) का एक महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन एक फल होते हुए भी, इसकी गिनती सब्जियों में की जाती है। टमाटर की इसी सर्वव्यापकता को देखते हुए अमेरिका की एक बायोटेक्नोलॉजिकल कम्पनी ने टमाटर की एक सर्वथा नयी किस्म, ''बायोटेक टमाटर'' का आविष्कार किया है।

''बायोटेक टमाटर'' की प्रजनक केलीफोर्निया की 'केलीन इनकारपोरेशन' है। यद्यपि देखने एवं स्वाद में यह नयी किस्म टमाटरों की अन्य किस्मों जैसी है, परन्तु वंशाणु अभियांत्रिकी के आश्चर्यजनक कौशल से यह किस्म अन्य किस्मों से पूर्णतया अलग हो गयी है। टमाटर की प्रचलित साधारण किस्मों को कृषक पूर्णरूपेण पकने के लिए पेड़ पर नहीं छोड़ पाते हैं तथा तोड़ने के बाद बाजार में इनका भण्डारण भी अधिक दिनों तक नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अधिक दिनों तक भण्डारण करने से वे पिलपिले हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप टमाटरों का मूल्य गिर जाता है। टमाटर की उक्त नयी किस्म में वंशाणु अभियांत्रिकी के द्वारा उक्त दुर्गुणों को दूर कर दिया गया है।

वंशाणु स्तर पर हुए परिवर्तन के कारण टमाटर उत्पादक अब मधुर स्वाद वाले टमाटर उत्पन्न करने के लिए उसे पेड़ पर पकने के लिए छोड़ सकेंगे तथा अन्य साधारण टमाटरों की तुलना में बिक्री हेतु बायोटेक टमाटरों का लम्बे समय तक भण्डारण भी किया जा सकेगा। केलीन कम्पनी के वैज्ञानिकों ने यह चमत्कार टमाटर को पिलपिला करने वाले एन्जाइम को नियन्त्रित करने वाले वंशाणु (जीन) को परिवर्तित करके किया है जिसके परिणामस्वरूप पकने के बाद टमाटरों के पिलपिला हो जाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही अवरुद्ध हो जाती है। परन्तु अमेरिकी कृषक टमाटर की इस नयी किस्म की खेती अमेरिकी खाद्य नियन्त्रण विभाग के अनुमोदन के उपरांत ही कर सकेंगे।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि टमाटर या किसी भी पौधे से किसी एक विशिष्ट वंशाणु को निकाल लेने या उसमें कोई नया बाहरी वंशाणु डाल देने से, उस पौधे की जैविक क्रियाओं, तथा वृद्धि दर, रोग-प्रतिरोध क्षमता, या उसके फलों के पोषक तत्वों की मात्रा पर कोई भी अप्रत्याशित प्रभाव पड़ सकता है। अमेरिकी खाद्य नियंत्रण विभाग बायोटेक टमाटर के सन्दर्भ में इन्हीं तथ्यों का गहनता से अध्ययन कर रहा है कि नये वंशाणु युक्त इस टमाटर का उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य तथा वातावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं पड़ेगा।

खाद्य नियंत्रण विभाग के आयुक्त, फैंक ई. यंग के अनुसार, किसी आर्केस्ट्रा की भांति ही प्रत्येक जीव लाखों-करोड़ों वंशाणुओं की क्रियाओं का समवेत रूप होता है, लेकिन किसी एक विशेष वंशाणु को निकालकर उसकी जगह दूसरा वंशाणु डालना ठीक वैसा ही है, जैसे किसी आर्केस्ट्रा से किसी वाद्ययंत्र को निकालकर उसकी जगह कोई दूसरा वाद्ययंत्र सम्मिलित कर लेना। ऐसा करने से पहले हमें यह देखना पड़ेगा कि कहीं इस वाद्ययंत्र के कारण पहले के स्थापित समवेत मधुरस्वर से कोई अलग स्वर तो नहीं निकलने लगा है, या फिर वास्तव में उसमें कोई गुणात्मक वृद्धि हो गयी है। परन्तु केलीन कम्पनी के वैज्ञानिकों का कहना है कि रिकाम्बीनेन्ट तकनीक द्वारा किसी विशिष्ट वंशाणु को किसी जीव में डालने या निकालने से उस जीव में उत्पन्न हो सकने वाले सम्भावित दुष्प्रभावों की मात्रा पारम्परिक पादप प्रजनन विधि द्वारा विकसित नयी किस्मों से उत्पन्न हो सकने वाले दुष्प्रभावों की तुलना में काफी कम होगी, क्योंकि वंशाणु अभियांत्रिकी तकनीकी में प्रयुक्त होने वाले वंशाणु के बारे में विस्तृत जानकारियां

पहले से ही ज्ञात रहती हैं, जबकि पारम्परिक पादप प्रजनन विधि में ऐसा नहीं होता है। इस प्रकार, पारम्परिक पादप प्रजनन की तुलना में वंशाणु अभियांत्रिकी तकनीकी में किसी विशिष्ट जीन को किसी जीव में डालने या निकालने से पूर्व ही उससे उत्पन्न हो सकने वाले प्रभावों का आकलन किया जाना सम्भव रहता है।

उक्त विवादों के सम्बन्ध में केलीन कम्पनी के निदेशक, डोनाल्ड एम्ले के अनुसार, बायोटेक टमाटर में टमाटर को पिलपिला कर देने वाले एन्जाइम के संश्लेषण को वंशाणु अभियांत्रिकी द्वारा रोकना वस्तुतः पारम्परिक पादप प्रजनन तकनीकी द्वारा इच्छित गुण विकसित करने की एक 'शार्ट कट' विधि है, अन्यथा पादप प्रजनक कभी-न-कभी इस गुण को पादप प्रजनन की दीर्घावधि वाली विधियों द्वारा ही प्राप्त करते। इसके साथ ही, श्री एम्ले का यह भी कहना है कि यदि आप बायोटेक टमाटर के बाह्य लक्षणों, उनमें उपलब्ध विटमिन 'ए' और 'सी' की मात्राओं को देखें, तो पायेंगे कि यह अन्य साधारण टमाटरों की भांति है और हम इन गुणों में कोई भी परिवर्तन करने नहीं जा रहे हैं।

- डा. राजकिशोर
अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद - 224001

चुंबक चिकित्सा

पानी में विद्युत और चुंबक की शक्ति को रखने की क्षमता होती है। जल को चुंबक के क्षेत्र से प्रभावित करने पर उसमें परिवर्तन हो जाते हैं, फलस्वरूप चुंबक जल पीने से मनुष्य के शरीर में अनेक परिवर्तन होकर शरीर में से व्यर्थ रोग पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। हमारे शरीर में 70% द्रव पदार्थ और 30% घन पदार्थ हैं। चुंबक की चिकित्सा के साथ, इस चुंबक जल को भी प्रतिदिन पीने से हमारे शरीर के द्रव पदार्थ में और रक्तनाल में रहनेवाले मालिन्य पदार्थ को बहुत जल्द बाहर निकालकर हम अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं। अधिक नमक, चर्बी, कैल्शियम आदि को आसानी से बाहर निकाल कर, कलेजे की बीमारी, उच्च रक्तचाप, रगों में कमजोरी, गुर्दा संबंधी बीमारियाँ और अजीर्णकारी बीमारियों में चुंबक जल बहुत उपयोगी है। आँख संबंधी बीमारी, खुजली, अनेक प्रकार के गोखरू और मसूड़ों की सूजन संबंधी बीमारियों में भी चुंबक जल का उपयोग होता है।

प्राकृतिक चुंबक जल

भारत, फ्रांस आदि देशों की कुछ नदियों में चुंबक जल के लक्षण हैं। इस चुंबक जल का सेवन करने से अनेक रोगों का निवारण हो सकता है। सहज सिद्ध चुंबक के पत्थरों से आये हुए जल में चुंबक की शक्ति रहने के कारण उस जल को अधिक प्रमुखता दी गयी है।

चुंबक जल को तैयार करने की पद्धति

चुंबक जल को बनाने की तीन पद्धतियाँ हैं। प्रत्येक में 2000 गास की चुंबक शक्ति की जरूरत होती है।

(क) उत्तर ध्रुवजल : पीने के पानी को उबाल और ठंडा करके एक बोतल में भरकर उसे उत्तर ध्रुव चुंबक पर लगभग बारह घंटे रखने से उस पानी को उत्तर ध्रुव की चुंबक शक्ति मिल जाती है। इस ध्रुव के जल से टाइफाइड, मलेरिया और सब तरह के बुखार, बेक्टीरिया और वायरस से होनेवाले रोग (माता, मम्स आदि) आँख की बीमारियाँ, मसूड़ों में सूजन, टान्सिलाइटिस, पेट संबंधी रोगों की चिकित्सा की जाती है। फोड़े, फुन्सियों को साफ करने के लिए भी इस जल का उपयोग कर सकते हैं। आँख संबंधी बीमारियों में इस जल को आँख में डाल सकते हैं।

(ख) दक्षिण ध्रुवजल : ऊपर बतायी गयी विधि के अनुसार ही दक्षिण ध्रुव जल तैयार होता है। इस जल के सेवन से शरीर के आंन्तरिक अवयव बहुत तेज़ी से काम करते हैं। यह मुख्य रूप से मलमूत्र का विसर्जन न होने और खून का दौरान कम होने में उपयोगी है। इस जल को पीने से पेट, कलेजा आदि अवयवों में रसों की उत्पत्ति सक्रिय रूप में होती है।

(ग) मिश्रित जल : उत्तर ध्रुव जल तथा दक्षिण ध्रुव जल को समान परिमाण में मिश्रित करके मिश्रित जल तैयार कर सकते हैं। दूसरी विधि में, एक बोतल में एक लिटर जल को उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों के बीच में रखकर और दोनों ध्रुवों को एक लोहे की छड़ से जोड़कर लगभग 12 घंटे रखने से मिश्रित जल तैयार होता है।

मिश्रित जल सर दर्द, पेट दर्द, रगों की कमजोरी,

अपच, लंबर स्पांडिलाइटिस, मस्कुलर डिस्ट्रोफी, सब प्रकार के जोड़ों के दर्द, सायटिका आदि रोगों में उपयोगी है। इस जल का सेवन करने से किसी भी तरह की बीमारियों से बचा जा सकता है।

वयस्क इस चुंबक जल को दिन में तीन बार 50 मि.लीटर ले सकते हैं। छोटे बच्चों को दिन में 3-4 चम्मच के हिसाब से दो बार दे सकते हैं।

एक बार तैयार किये गये जल में चुंबक शक्ति केवल 24 घंटे तक ही रहती है।

चुंबकों को लकड़ी के तख्ते पर रखकर ही चुंबक जल को तैयार किया जाता है।

- पवनकुमार अगरवाल,
चुंबकीय चिकित्सक
घर सं. 21-6-407,गांधी बाजार, झूला,
हैदराबाद - 500 002.

मधुमेह और मेथी के बीज

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार, मधुमेह की गणना आज विश्व के सबसे अधिक होनेवाले रोगों में तीसरे स्थान पर की जाती है। प्रथम स्थान पर हृदय एवं रक्त नलिकाओं संबंधी रोग हैं और दूसरे पर अर्बुद जन्यरोग। विश्व का प्रत्येक पांचवां व्यक्ति मधुमेह रोग से आज पीड़ित है।

मधुमेह पैंक्रीयस नामक पाचनग्रंथि के ऊतकों द्वारा इंसुलिन नामक हारमोन के उत्पादन में न्यूनता अथवा एकदम न बनाने से प्रकट होता है। रोगियों में इंसुलिन का उत्पादन इतना न्यून होता है कि वसा या शर्करा का पूर्ण अपचय नहीं हो पाता और रोगियों के रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। जब यह स्तर बढ़ते-बढ़ते गुर्दों की कार्य-अवसीमा को पार कर जाता है, तब मूत्र द्वारा भी ग्लूकोज का उत्सर्जन होने लगता है।

मधुमेह के रोगियों में विशिष्ट रूप से छोटी-छोटी रक्त वाहिनियों में भी जटिलताएं अथवा अवरोध होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त, इन रोगियों में हाइपर-लाइपिडेमिया भी एक बड़ी समस्या बन जाती है जिसमें बढ़े हुए लाइपिडस्तरों की फ्रीक्वेंसी 40% से 90% तक होती रहती है। इस कारण भी मधुमेहग्रस्त रोगियों में हृदय एवं रक्त वाहिनियों से संबंधित विकृतियां बढ़ जाती हैं जो इन रोगियों की मृत्यु-दर में 2 से 3 गुनी वृद्धि होने का मूल कारण हैं।

मेथी (जो सामान्यतः मसाले के रूप में प्रयोग होती है) के बीजों पर किये गये शोध से यह पता चला है कि सामान्य रूप से ये हाइपर ग्लाइसेमिया और मधुमेह ग्रस्त रोगियों में ग्लूकोज के स्तर में गिरावट लाने में सहायक होते हैं। मधुमेह ग्रस्तरोगियों में ग्लूकोज के स्तर में, उपवास के दौरान 24 घंटों में होने वाले मूत्र शर्करा उत्सर्जन के स्तर में और सीरम कोलेस्टेरॉल तथा ट्राइग्लिसराइड्स के स्तर में आशातीत गिरावट लाने में इन बीजों का अचूक प्रभाव होता है।

रोग के सभी प्रमुख पहलुओं, यथा पॉलीयूरिया, पॉलीफेजिया और पॉलीडिप्सिया (जो कुछ मधुमेह ग्रस्त रोगियों में पायी गयी हैं) पर भी मेथी के बीजों के सेवन करने से सुधार होता है। मेथी के बीजों में उपस्थित "गम फाइबर" के कारण उपयुक्त लाभ होते हैं। मेथी के बीजों की कड़वाहट को पानी में भिगोकर दूर किया जा सकता है। इस प्रकार भिगोने से बीजों के औषधीय गुणों को कोई क्षति नहीं होती है। ये बीज दालों की भांति प्रोटीन से परिपूर्ण होते हैं, साथ ही इनमें लाइसिन भी अधिक होता है। दालों के रूप में इनका व्यवहार आसानी से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इन बीजों का रस (सूप), कढ़ी अथवा कैण्डी के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके आटे को चपाती बनाते समय आटे में मिलाया जा सकता है। मधुमेह के रोगियों को अपने दैनिक भोजन में 25-100 ग्राम बीजों को प्रयोग करना चाहिए।

अखिलेश कुमार तिवारी
द्वारा, श्री राम प्रताप तिवारी,
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम-रांची- 834010

गर्भावस्था में गाय-भैंस की देखभाल

गर्भधारण की अवस्था में मानव की ही भाँति गाय-भैंस के आहार में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था के अन्तिम 3-4 महीनों में यदि गाभिन गाय-भैंस का विशेष ख्याल नहीं रखा गया, तो जच्चे-बच्चे तो कमजोर होते ही हैं, साथ ही

उस वियान में दूध का उत्पादन भी क्षमता से कम होता है। गाय एवं भैंस का गर्भकाल क्रमशः लगभग 285 दिन एवं 310 दिन का होता है।

सर्वप्रथम गाय-भैंस के पालखाने के 2-3 माह बाद स्थानीय पशु चिकित्सक से गर्भ की जाँच कराकर यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह गाभिन है या नहीं। 5 वें-6 ठें महीने से गर्भ में वच्चे के शरीर की वृद्धि बहुत तेजी से होने लगती है। उस समय अतिरिक्त आहार देना जरूरी है। गाय-भैंस के आहार में हरे चारे का महत्व बहुत है। हरा-चारा यदि सम्भव हो, तो उसकी इच्छा भर खिलाना चाहिए तथा इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि पाचन शक्ति न बिगड़ने पाये। यदि हरा-चरा समुचित माला में उपलब्ध न हो, तो सूखे चारे पर भी पालन किया जा सकता है। इस हालत में विटामिन 'ए' सही खुराक में प्रतिदिन देना आवश्यक होता है। इसकी कमी से बच्चे कभी-कभी अन्धे जन्म लेते हैं जो किसी भी उपचार द्वारा ठीक नहीं होते हैं। इस विटामिन में यथा समय गर्भधारण में सहायता मिलती है।

गाय-भैंस को नियमित रूप से 'पोषण राशन' के रूप में जो संतुलित दाना व मिश्रण दिया जाता है वह गाभिन गाय-भैंस के गर्भ में पल रहे वच्चे की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। अतः 1.5-2 कि.ग्रा. संतुलित दाना मिश्रण अतिरिक्त राशन के रूप में प्रतिदिन देना चाहिए।

गाभिन गाय-भैंस को इच्छानुसार दिन में तीन-चार बार पानी पिलाना चाहिए। आहार भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में कई बार बाँटकर देना चाहिए। एक बार में अधिक आहार से पेट का तनाव गर्भ में पल रहे बच्चे पर दबाव डालता है जो नुकसान देह हो सकता है।

गर्भ में पल रहे वच्चे की हड्डी मजबूत हो तथा गाय-भैंस को सही दूध उतरे, इसके लिए कैल्सियम की आवश्यकता अधिक होती है। साधारणतया सामान्य आहार से आवश्यक मात्रा में कैल्सियम नहीं मिल पाता है, अतः गाभिन गाय-भैंस को कैल्सियम-पूरक देना आवश्यक हो जाता है।

कैल्सियम ही नहीं, अन्य खनिज लवण भी गाभिन गाय-भैंस को नियमित रूप से खिलाना चाहिए। फासफोरस, आयोडिन, लौह, ताम्बा, कोबाल्ट, मैंग्नीज, साधारण नमक इत्यादि प्रमुख खनिज लवण हैं। बाजार में विभिन्न ट्रेडनामों (मिनमिक्स, मिल्क मिन इत्यादि) से ये खनिज लवण 'खनिज मिश्रण' के रूप में उपलब्ध हैं। किसी एक खनिज मिश्रण का 25-30 ग्राम प्रतिदिन गुड़ के साथ गाभिन गाय-भैंस को खिलाना चाहिए। नियमित खनिज-मिश्रण खिलाने से समय पर पुनः गर्भधारण की सम्भावना अधिक होती है। साथ ही, दुग्ध-उत्पादन की क्षमता भी सही बनी रहती है। खनिज मिश्रण के अलावा, साधारण नमक 30 ग्राम प्रतिदिन देना अच्छा रहता है।

गाभिन गाय-भैंस को गर्भ के वें महीनें के अन्त में दूध दुहना अवश्य ही बन्द कर देना चाहिए, अन्यथा अगले बियान में दूध-क्षमता से कम प्राप्त होता हैं। साथ ही, बच्चे के विकास पर भी इसका प्रतिकूल असर पड़ता है। आमतौर पर देशी गाय-भैंस स्वतः गर्भकाल के 7 वें माह के पूर्व ही दूध देना बन्द कर देती हैं, परन्तु विदेशी एवं संकर नस्ल की गायों को दूध देना गर्भकाल के 7 वें माह के अन्त में बन्द करना पड़ता है। दूध दुहना एकाएक बन्द करने से थनैला रोग होने का भय रहता है, अतः पहले एक शाम दूध दुहना बन्द कर देते हैं। इसी तरह 2-3 दिन बाद तीन शाम पर दूध दुहा जाता है। इस प्रकार, दूध दुहने का अन्तराल बढ़ा-बढ़ाकर दुहने से 15-20 दिनों के अन्दर वह गाय-भैंस दूध देना बन्द कर देती है।

खनिज मिश्रण व विटामिन के दैनिक व्यवहार के अलावा, गर्भावस्था में किसी भी दवा (एण्टीबायेरिक्स आदि) का प्रयोग पशुचिकित्सक की सलाह पर ही करना चाहिए। सामान्यतः संक्रामक रोगों के विरूद्ध टीका छः माह के ऊपर गाभिन गाय-भैंस को नहीं लगाना चाहिए। साथ ही, पशु चिकित्सक की सलाह पर कृमिनाशक दवा की एक खुराक गर्भकाल के प्रथम दो-तीन माह के अन्दर अवश्य देनी चाहिए।

चन्द्रभान सिंह
'जूनियर साइन्टिस्ट' पशुविज्ञान विभाग,
नरेन्द्र देव कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कुमारगंज - 22 42 21 (फैज़ाबाद)

बाल-विज्ञान

अद्‌भुत मछलियां

राजर्षि मिश्र
551-क/188, ओम नगर चौराहा,
आलमबाग, लखनऊ

समुद्र में पायी जाने वाली अत्यधिक विशाल मछली का पानी में उछलना एक आश्चर्य जनक क्रिया है। इस विस्मयकारी क्रिया को 'ब्रीचिंग' कहते हैं। ब्रीचिंग में ही हम इनका दर्शन कर पाते हैं। एक बड़ी ''हम्पबैक ह्वेल'' आकार में 15 मी. लम्बी एवं 33 टन वजन की होती है। 70% उछालों में यह अपने शरीर को पूरा का पूरा बाहर उछाल लेती है। ह्वेल समुद्र की सतह से 70^{0} तक के कोण में किसी भी कोण में कूद सकती है।

ह्वेल पानी में एक क्रमबद्ध तरीके से उछलती हैं। इन उछालों के समय में 40 सेंकड से कुछ मिनट तक का अन्तर होता है। एक क्रम में ये एक तरह से ही उछली हैं और अन्त में थकने के कारण क्रमानुसार इनकी उछालें भरने की ऊंचाई धीरे-धीरे कम होती जाती है। यह पता लगा है कि 12 मी. लम्बी हम्पबैक ह्वेल यदि 35^{0} के कोण से पानी से बाहर उछले, तो उसकी गति 15 नाट्स (17 मील प्रति घंटा) होती है, जो किसी भी जन्तु की पानी में अधिकतम गति है। एक उछाल भरने में ह्वेल को अपनी पूरी शक्ति, 2500 किलो कैलोरी का उपयोग करना पड़ता है। आराम की अवस्था में ह्वेल के अन्दर जैविक क्रियाओं से एक दिन में 3,00,000 किलो कैलोरी पैदा होती हैं। इस प्रकार, एक उछाल में लगभग 100 वें हिस्से से भी कम ऊर्जा का व्यय होता है।

एक अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकला है कि जब हवा की गति तेज हो जाती है, तो ह्वेल का पानी में उछलना भी तेज हो जाता है। यह भी पाया गया है कि जब ह्वेल दूसरी ह्वेल को उछलते हुए देखती है, तो खुद भी उछलने लगती है। इस खोज से पता लगता है कि ह्वेल का पानी से उछलना, संदेश अथवा संकेत के आदान-प्रादान के लिए होता है। 'सदर्न राइट' ह्वेल में यह देखा गया है कि वह तब ज्यादा उछलती है जब उसके आस पास और मछलियाँ भी होती हैं। अनुकूल परिस्थितियों में समुद्र के पानी में आवाज ज्यादा दूर तक सुनायी देती है। ह्वेल का उछलना अपने क्रोध को व्यक्त करने तथा शक्ति प्रदर्शन के लिए भी सम्भव है। प्रणय निवेदन के समय अपनी समर्थता दिखाने के लिए ह्वेल शक्ति प्रदर्शन करती है।

सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प चीन देश की मछलियां हैं। सिल्वर कार्प शीघ्र ही बढ़ती है तथा छोटे शैवालों को खा जाती है। इसलिए इसके गलफड़ों में गिल टेकर्स विकसित हो जाते हैं। सिल्वर कार्प सम्पूरक भोजन भी मजे से खा लेती है।

ग्रास कार्प की विशेषता तो इसके नाम से स्पष्ट है। यह घास खाती है, इसलिए इसका नाम ग्रास कार्प रखा गया है। घास खाने में इसे जिस तरह की महारत हासिल है, वैसी शायद विश्व की किसी अन्य मछली को नहीं है, इसलिए जलीय घास-पात के नियंत्रण के लिए ग्रास कार्प विश्व के बहुत-से देशों में पाली जाती है। हमारे देश में सिल्वर कार्प तभी से देखे गये जब जापान से इसके लगभग 360 बच्चे प्राप्त किये गये। उसी वर्ष लगभग चार हफ्ते बाद 29 दिसम्बर, 1959 को हांगकांग से ग्रास कार्प के बच्चे भी लाये गये थे। इनकी कुल संख्या 382 थी। इन मछलियों को अध्ययन के लिए पहले केन्द्रीय अन्तः स्थलीय मछली अनुसंधान संस्थान के तत्कालीन उपकेन्द्र, कटक में रखा गया, एवं पर्याप्त अध्ययन के बाद कुछ ही वर्षों में इनके प्रजनन-पालन की प्रौद्योगिकी तैयार कर ली गयी। आज सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प पूरे देश में

पाली जा रही हैं।

एक मछली फ्यूगू होती है, जो पोटैशियम सायनाइड से 275 गुना अधिक तेज विष अपने यकृत तथा आंतों में संचित रखती है। इस कथन पर एकाएक विश्वास करना कठिन है, परन्तु जापान जैसे छोटे देश में पिछले दस वर्षों में दो सौ से भी अधिक मनुष्यों ने इस मछली का स्वाद लिया एवं मौत की गोद में समा गये। उनको यह मछली अत्यधिक स्वादिष्ट लगती है।

इस मछली की लगभग 100 जातियां होती हैं जिनमें से 60 जातियां जहरीली होती हैं। जब भी इसे खतरे का आभास होता है, तो यह अपनी फोम जैसी खाल में हवा और पानी भरकर एकदम बड़ी गेंद या फुटबाल जैसी आकृति बना लेती है और खतरा टलने का आभास होते ही हवा और पानी बाहर निकाल कर सामान्य मछली का आकार ले लेती है। यही इस मछली की मुख्य पहचान है। जब मछली गेंद जैसी फूली हो, तो कोई इसे नुकसान नहीं पहुंचा सकता है।

फ्यूगू के शरीर में विष विभिन्न अंगों, जैसे आमाराय, आंत, यकृत और गर्भाशय में पाया जाता है। इसके जहर से होने वाली मौत बहुत कष्टप्रद होती है। विष के प्रभाव से मनुष्य के हाथ-पैर सुन्न हो जाते हैं। वह बैठ नहीं सकता, उसकी सोचने की शक्ति तो पूर्ववत होती है, किन्तु बोल नहीं सकता। इतनी विषैली मछली होने के बावजूद, जापान के बड़े और अच्छे होटलों में इस मछली की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। जापान में एक शिमोनोसेकी नगर में, जिसे 'फ्यूगू नगर' के नाम से भी जाना जाता है, जाड़े के मौसम में इस मछली की चार करोड़ डालर तक की बिक्री होती है। वहाँ के मछुआरे तथा मजदूर रबड़ के बूट, हाथों में भारी दस्ताने तथा रबड़ की जैकेट पहनकर ही इस मछली को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की हिम्मत कर पाते हैं। जापान के बहुत से सार्वजनिक, उद्यानों में फ्यूगू की पुरातत्व मूर्तियां देखने मिलती हैं। मिश्र की पांचवी डायनैस्टी के मकबरों पर भी, जो कि 2700 वर्ष ईसा पूर्व के हैं, फ्यूगू के चित्र देखने को मिलते हैं।

फ्यूगू मुख्यतः हिन्द महासागर और दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पायी जाती है। उत्तरी अमेरिका में पायी जाने वाली फ्यूगू भी अत्यन्त जहरीली होती है। फ्लोरिडा के सागर में भी फ्यूगू की छः जातियां पायी जाती हैं। स्वस्थ फ्यूगू तीन फीट तक लम्बी और तीस पौंड वजन की होती है। कुछ मछलियों की खाल पर सेई जैसे कांटे भी होते हैं। इसकी खाल मोटी, परन्तु इतनी पारदर्शक होती है कि लोग इसकी खाल को बल्ब पर मढ़ाकर झीनी रोशनी का आनन्द लेते हैं। यह तैरती नहीं है चूंकि इसके शरीर में हड्डियां कम होती हैं और पसलियां भी बहुत कम होती हैं। धड़ की हड्डियां भी नहीं होती हैं। यह देखने में बड़ी सीधी-सादी लगती है।

तोक्यो विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में फ्यूगू मछली का जहर शीशी में पाउडर के रूप में रखा हुआ है। इसे टैट्रोडोटोक्सिन का नाम दिया गया है। एक साधारण फ्यूगू मछली में एस्पिरिन की गोली के लगभग दसवें भाग के बराबर जहर पाया जाता है। इस पदार्थ की परमाणु संरचना अभी ज्ञात नहीं हो सकी है। यह जहर नाड़ी संस्थान को प्रभावित कर, बेकार कर देता है। इसका एक मि.ग्रा. जहर जो एक पिन से उठाया जा सकता है, किसी भी मनुष्य की जीवन लीला समाप्त करने में समर्थ होता है।

हिन्दी की सर्वप्रथम विज्ञान - पत्रिका

विज्ञान (मासिक)

75 से भी अधिक वर्षों से निरंतर प्रकाशित

: संपर्क सूत्र :

विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-211 002

लेखकों से निवेदन

- ❐ ''वैज्ञानिक'' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखेः
- ❐ लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
- ❐ लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- ❐ कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- ❐ लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिएं छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- ❐ विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें, पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र बनाएं,
- ❐ अस्वीकृत रचनाएं डाक - टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी।

- संपादक

''वैज्ञानिक'' के स्वामित्व का व्यौरा
फार्म IV

1.	प्रकाशन स्थल	: भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
2.	प्रकाशन	: त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	: डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
4.	प्रकाशक का नाम	: डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
5.	संपादक का नाम	: डा. जनार्दन स्वरूप
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
6.	कुल पुंजी के 1% से अधिक के: भागीदारों के नाम और पते	हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085

मैं, डा. शिव प्रकाश गर्ग, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही है।

- डा. शिव प्रकाश गर्ग
व्यवस्थापक, ''वैज्ञानिक''

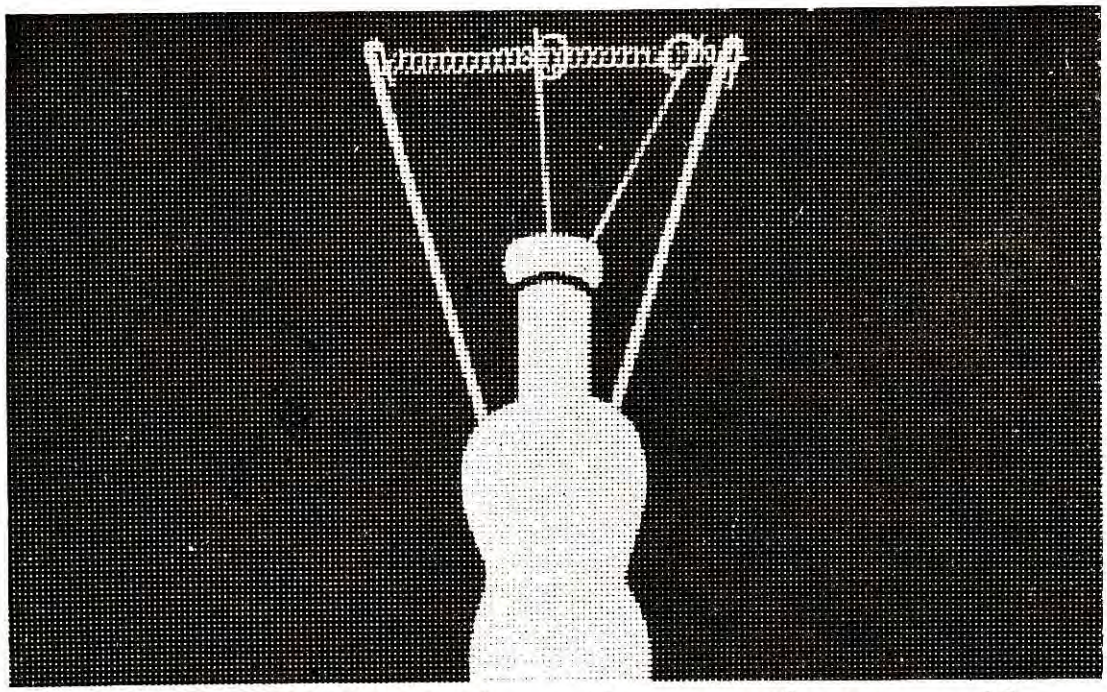

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited

(A Government of India Enterprise)

Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153-84

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, **111**, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - **400 020** (भारत)

फोन : 290 914 -15 टेलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

: हमारे उत्पादन :

इलमेनाइट
रुटाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाजाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइट्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड
एवं
कृत्रिम रुटाइल

CHOUDHARY BROS.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए **डा. जनार्दन स्वरूप** द्वारा संपादित तथा **डा. शिव प्रकाश गर्ग** द्वारा **गुड्डी प्रिंटर्स, मुलुंड** बंबई में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

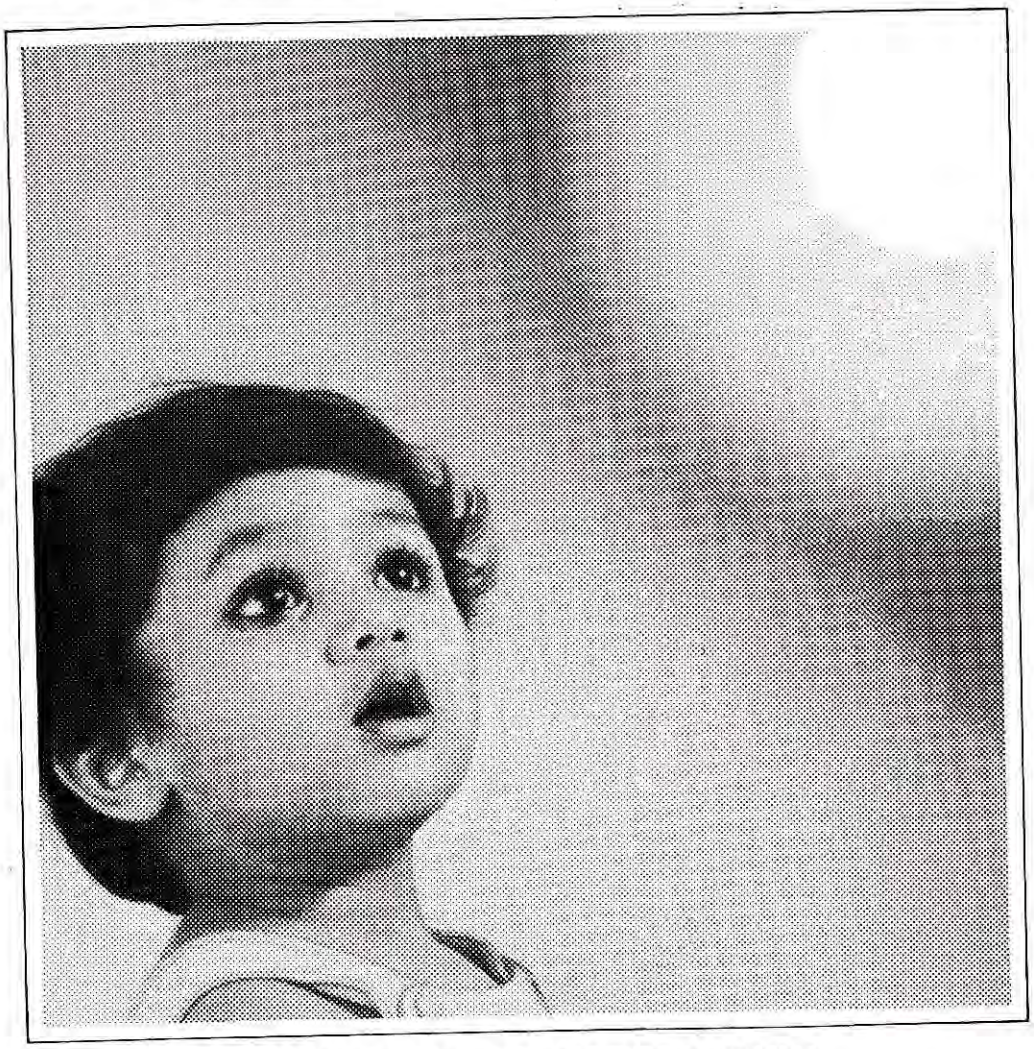

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COME

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NPC-42